सिन्दूर की लाज

[चौदह मौलिक कहानियों का संग्रह]

लेखक—

पण्डित ब्रजेन्द्र नाथ गौड़

समर्पण—

यह कहानियाँ बीते हुए उन क्षणों को समर्पित है, जब किसी ने मुझे समझने और पाने की कोशिश की थी।

—व्रजेन्द्र नाथ गौड़

यह संग्रह—

ये कहानियाँ—

स्वाभाविक है कि अपनी बनाई हुई चीज़ सभी को अच्छी लगती है, उसे अच्छा साबित करने के लिए बनाने वाला कोशिश करता है, पर प्रत्यक्ष में, सम्भवतः सकोचवश, कुछ कहने की क्षमता कम लोगों में होती है। चीज़ चाहे अच्छी ही हो, लेकिन प्रशसा करने वाले लोगो की, कम से कम, इस देश में बहुत कमी हैं। पार्टीबन्दी की भावना, हिन्दी के साहित्यिकों में, बहुत है। ऐसे में किसी चीज़ पर निष्पक्ष राय देने वालों का अभाव होना आश्चर्य की बात नहीं है।

इस सग्रह की कुछ कहानियाँ ससार की अन्य भाषाओं की कहानियों से टक्कर ले सकती हैं, यह बात कहते हुए मुझे ज़रा भी सकोच नहीं होता; क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरी कहानियाँ किस स्टैण्डर्ड की हैं। मैं यह बात अपने उन पाठकों को याद दिला रहा हूँ, जो निष्पक्ष होकर इन्हें पढ़ेंगे। जो इसे मेरी अहम्भावना कहें, उनके लिए मैं कुछ न कहकर, यह आग्रह करूँगा कि वे मेरे युग की कहानियों से इनका मुक़ाबिला कर लें।

एक बात—

धन्यवाद देना इसलिए आवश्यक है कि अनेक पत्र-सम्पादकों ने मेरी कहानियों का सम्मान करके, उन्हें और मुझे समझ कर, प्रोत्साहन दिया और प्रकाशक ने कागज़ के अभाव में भी इन्हें मेरे पाठकों के लिए पुस्तकाकार छपाया।

'ऊर्मिला' ऑफ़िस,
लखनऊ
वसन्त, १९४३

—व्रजेन्द्र नाथ गौड़

चौदह कहानियाँ

सिन्दूर की लाज—

मेरे मित्र महोदय मुझे जिनके घर ले गये थे, वे तिरछे-रिश्ते में उनकी मुँहबोली बुआ होती थीं।

जब हम उनके यहाँ पहुँचे, उनके श्वसुर महाशय बाहर टहल रहे थे। उन्होंने अन्दर जाकर हमारे आने की सूचना दे दी। बाहर का कमरा ख़ाली था। अन्दर सब लोग भोजन कर रहे थे।

'उन्हें' पता न था कि उनके भतीजे के साथ, कमरे में, कोई और भी बैठा है। जब मुझे देखा तो झिझक गईं, फिर सिर का पल्ला ठीक करती हुई कमरे में आकर दीवार के सहारे खड़ी हो गईं। हाथ जोड़ कर नमस्ते भी उन्होंने किया। मैंने भी हाथ जोड़ दिये।

मैंने उन्हें इतमीनान से देखा। मेरी परख के अनुसार वे अत्यन्त सुन्दरी थीं। सुन्दरता में रङ्ग, नक़्शा और स्वास्थ्य, सभी, आ गया।

उनकी आयु बीस से अधिक नहीं थी।

बुआ-भतीजे में घरेलू बातें होती रहीं। मैं और वे दोनों ही बार-बार एक-दूसरे को देख लेते थे। मैं अपनी भावनाएँ समझने के साथ ही साथ उन्हें भी समझ रहा था।

जब वे मेरे मित्र से बातें कर रही थीं, तब प्रसङ्गवश दो-एक शब्द अङ्गरेज़ी के भी बोल देती थीं—इससे और उनके पहिनाव-ओढाव और फ़ैशन से मैंने अनुमान किया कि वे हिन्दू-गृहिणी से कुछ अधिक शिक्षिता हैं।

वे मुस्कराती तो बराबर रहीं; परन्तु बीच-बीच में एक दो बार खुल कर भी हँसीं। न मालूम किस बात पर, एक बार, उन्होंने अपने मोती जैसे, चमकदार, छोटे-छोटे दाँतों को ओठों के बीच से झाँकने की स्वतन्त्रता

दी कि मुझे भी हँसी आ गई।

उन्होंने इस बार कुछ स्थिरता से मेरी ओर देखा और तब मित्र महोदय से मेरी ओर नेत्रों का सङ्केत करके पूछा—'आपको मैंने नहीं पहिचाना ?'

उनकी वाणी मधुर, आकर्षक और सुरीली थी। वे बहुत धीरे-धीरे बोल रही थीं, फिर भी मैं उनकी सभी बातें साफ-साफ सुन रहा था।

मैंने दो क्षण, मित्र के बोलने की, प्रतीक्षा की, परन्तु जब वे न बोले, तो मैंने ही कहा—'मै इनका दोस्त हूँ।'

मैं समझा, वे इससे कुछ अधिक जानने की इच्छुक थीं, पर फिर मैंने कुछ कहा नही।

× × ×

मेरे मित्र उनके यहाँ केवल उनको देखने, उनकी बाते सुनने और उनके आकर्षक-सौन्दर्य का दूर से ही रसास्वादन करने जाते थे, ऐसा उन्होंने मुझे बताया था। यह भी कहा था कि उनकी बुआ मैट्रिक पास हैं।

मैं चित्रकार हूँ। मेरे लिए कुछ नहीं—मैं सौन्दर्य की ओर आकर्षित होने का अधिकारी हूँ; मैं किसी भी सुन्दर या असुन्दर चीज़ को जब तक चाहूँ देखूँ। मेरे लिए यह पाप नहीं है, ऐसा मै समझता हूँ और शायद यह ठीक भी है।

परन्तु मेरे मित्र ग़लती पर हैं। एक तो वे उनके भतीजे—भले ही सीधा रिश्ता न हो—फिर भी उन्हें बुआ तो कहते ही हैं। दूसरे, किसी विवाहिता रमणी की ओर आकर्षित होना और वह भी उसके सौन्दर्य की उपासना और कोमल स्पर्श की लालसा के कारण, कितने आश्चर्य की बात है ? मैं समझता हूँ, न्याय उनके सामने कभी भी मुझे दोषी नहीं ठहरा सकता। फिर मेरे मित्र मुझ पर दोषारोपण करते हैं कि मै उनकी बुआ का प्रशंसक हूँ।

मेरा ख़याल है, वे मुझे कुछ ग़लत समझ रहे थे।

जहाँ तक कला का सवाल है, वहाँ तक तो मेरी दलील और सफ़ाई ठीक थी, परन्तु उससे भी कुछ आगे मै बढ गया था।

मानव यदि किसी चीज की ओर आकर्षित होता है तो वह आकर्षक खिचाव से आगे भी अपने अन्तर मे एक भावना लिये रहता है और न मालूम क्यों, मैं उनके निकट-सम्पर्क में आने के लिये बेचैन हो रहा था ! मैं उनपर अपने यह विचार प्रकट कर देना चाहता था !!

मै उन्हें कुछ-कुछ समझ रहा था। यह नहीं कह सकता कि मेरी भावनाएँ ठीक ही हों। मै जान गया था कि उनके पति पुराने ढग के अधेड व्यक्ति हैं और वे स्कूल में पढ कर मैट्रिक करने वाली इस समय की सुन्दरी नवयुवती। तब दोनों मे उतनी नहीं निभ सकती होगी जितनी एक उम्र के लडके-लड़कियों की निभ सकती है, जो स्कूल या कालेज के वातावरण से प्रेम का पाठ पढ कर निकलते हैं।

उनके पति .. ?

और मैं.... ?

लेकिन यह क्या ? मेरी और उनके पति की क्या समानता ? फिर मैंने ऐसा क्यों सोचा ? मेरे मन मे अवश्य ही कुछ बुरे विचार थे।

इतना समझ लेने पर भी मैं नासमझ बना रहा। लेकिन कभी मेरे मन में न मालूम कैसा-सा होने लगता। सोचते-सोचते एक ही निश्चय पर आ जाता।

वे मुझे ही देख कर तो हँस रही थीं ! फिर उन्होंने मेरा परिचय भी तो पूछा था ! कुछ नहीं, यह पाप नहीं कहा जा सकता ! मानव मानव में प्रेम होना स्वाभाविक है, मैं ग़लती नहीं कर रहा था।

उन्मादवश मनुष्य अपने को सही से ग़लत रास्ते पर भी ले जाता है। लेकिन समय रहते कोई यह जान भी पाये !

× × ×

कई दिन बाद शाम को उनके मकान की ओर गया। बाहर के घेरे

में छितरा-छितरा सा बग़ीचा लगा था। एक कोने में क़बूतरों के रहने का एक पुराना-सा बक्स पड़ा था। दरवाज़े की ओर बग़ल में शरीफे का एक बड़ा पेड़ था। चमेली की बेल बीच के दरवाजे के पास से ऊपर चली गई थी। मैं घेरे के पास कुछ देर तक खड़ा रहा। बीच के दरवाज़े पर चिक पड़ी थी। अन्दर से हल्का-हल्का प्रकाश, छिटक कर, सहन में पड़ रहा था।

वहाँ से हट कर मैं बग़ल वाली गली में चला गया। वहाँ उस समय काफी अँधेरा था। उनके मकान की रसोई इधर ही थी। दो खिड़कियों से हलकी रोशनी आ रही थी। दोनों खिड़कियों पर सींख़चे होते हुए भी महीन जाली तानी गई थी।

मैं वहाँ काफी देर तक खड़ा रहा, पर वे दिखाई न पड़ीं। उनके मकान से थोड़ी दूर आगे चल कर, उसी गली में, कोई महाशय टहल रहे थे।

वे दिखाई न पड़ीं, दूसरे मैंने समझा कि कहीं वे महाशय मुझे वहाँ टहलते देख सन्देह न करने लगें, यह सोच मैं घर जाने का इरादा करके गली से बाहर आ गया।

थोड़ी दूर ही एक वाचनालय की घड़ी में तब साढे आठ बज चुके थे।

रात को पत्रों के उत्तर लिखने बैठा, तो क़लम जब-तब रुक जाती। मैं उन्हीं के सम्बन्ध में सोचने लगता। काग़ज पर लिखे शब्द भद्दी-भद्दी लाइनों के समान दिखाई देते। दिमाग़ और मन पर ज़ोर देकर लिखने का प्रयत्न किया परन्तु नहीं लिख सका।

खाट पर लेटे-लेटे मैंने सोचा कि मैं यथार्थ में एक बड़े पापपूर्ण कार्य में प्रविष्ट हो रहा था। एक युवती को मै अपनी कला की ओट में, उसके कर्तव्य पथ से हटाने का प्रयत्न करने जा रहा था।

विवेक ने मुझसे कहा—'मानव जान-बूझ कर गलती नहीं करता;

लेकिन तुम यह जानते हुए भी कि ऐसा करना ठीक नहीं है, ग़लती करना चाहते हो, क्षणिक वासनाओं की शान्ति के लिए ? धिक्कार है !'

मैंने कहा—'नहीं, मैं ऐसा न करूँगा।'

मन के एक छोर से ध्वनि आई—'यदि इसे तुमने ग़लती समझा है, तो तुम बहुत मूर्खतापूर्ण निश्चय कर रहे हो। यदि यह ग़लती है, तो परमात्मा ने तुम्हें इस ओर इशारा ही क्यों किया ?'

मैं सोच न सका।

परमात्मा...!

परमात्मा ने मुझे उस तक क्यों पहुँचाया ? क्यों उसे इतना सौन्दर्य दिया ? और फिर मुझे, उसकी ओर आकर्षित करने का भी पूरा श्रेय परमात्मा को ही है।

पाप ने मुझे अपने काले-काले आवरण में लपेट लिया और मैं सो गया !

दूसरे दिन बहुत जल्दी नींद खुल गई। खाट पर पड़ा-पड़ा न मालूम क्या-क्या सोचता रहा !

मन्दिरों से घण्टे-घड़ियालों की झनकारें आ रही थीं। बहुत से आदमी भगवान् का नाम ले-लेकर एक लय में चिल्ला रहे थे। सामने दीवार पर रामचन्द्र जी की एक तस्वीर टँगी थी। मैंने उधर देख कर हाथ जोड़ दिये और दो-तीन बार 'राम-राम' भी कहा।

तब उठ कर बैठ गया।

उन्हीं का ख़्याल आ गया। मेरी स्थिति क्या है ? मेरा धर्म और कर्त्तव्य क्या है ? मुझे क्या करना चाहिए ? विचारों के उस सङ्घर्ष में मैं खो गया।

घण्टे घनघना रहे थे।

मैंने सोचा, मै सही रास्ते पर चलूँगा, जानबूझ कर भूल न करूँगा।

× × ×

सिन्दूर की लाज

एक दिन फिर उधर जाने का निश्चय किया। साफ कपड़े पहिने और एक छोटा-सा पत्र उन्हें देने के लिए लिखा :—

'मैं जो कुछ भी नीचे लिखने जा रहा हूँ, उसे पढ कर, सम्भव है, तुम मुझसे घृणा करने लगो, इसलिए मैं उसके लिए क्षमा चाहता हूँ और तुम से प्रार्थना करता हूँ कि जो कुछ भी निश्चय करो वह ज़रा सोच-समझ कर करना।

'वह बात, जिससे मैं समझता हूँ तुम नाराज हो जाओगी, यही है कि मैं तुम्हारी ओर आकर्षित होने के कारण तुम्हें प्रेम करने लगा हूँ। मैं जानता हूँ कि धर्म और कर्तव्य के सामने मैं तुम्हारे साथ अन्याय कर रहा हूँ।

'लेकिन मैं समझता हूँ कि मेरी तरह तुम भी इस सिद्धान्त को मानती होगी कि मानव-मानव मे प्रेम होना स्वाभाविक है। मेरा प्रेम कैसा है, यह मैं स्वयम् नहीं जानता।

'आशा है, उत्तर अवश्य दोगी।

तुम्हारा अपना ही,
उस दिन का कोई।'

पत्र लिख कर कोट की जेब मे रख लिया और जब वहाँ पहुँचा, अँधेरी गली में मुझे सात का घण्टा सुनाई पड़ा। उस दिन उस गली में कोई भी न था। रसोई-घर की दोनों खिड़कियों से आने वाली रोशनी गली के दूसरी ओर की दीवार पर पड़ कर थोड़ी जगह को हल्का प्रकाश दे रही थी।

एक बार वे शीघ्रता से चौके में आई। बाहर से तो घूँघट काढ कर आई थीं, पर अन्दर आकर मुँह खोल लिया।

मैं हाँ-ना की समस्या में कुछ उलझ-सा गया और मुझे इस झिझक में दो मिनट से अधिक समय लग गया। तब तक वे लालटेन लेकर बाहर चली गई। रसोई का दरवाजा भी वे बन्द कर गई थीं।

आधे घण्टे से अधिक वहाँ उनके पुनः वापस आने की प्रतीक्षा की; लेकिन फिर वे आईं नहीं। मैं अपने प्रेम-पत्र को वैसे ही जेब मे रक्खे हुए लौट आया।

उस दिन भी मैं बहुत बातें सोचता रहा, परन्तु फिर कोई भी दलील मेरी दूषित-भावनाओं को कर्तव्य की ओर इङ्गित न कर सकी।

दूसरे दिन भी मैं उसी समय उधर गया। आज भी रोज की तरह उस सूनी गली में उनके मकान की खिडकियों से रोशनी आ रही थी। वे रसोई में अकेली बैठी खाना बना रही थीं। गली में इधर-उधर देख कर मैं खिड़की के बिलकुल पास पहुँच गया।

मैंने धीमें स्वर में कहा—'नमस्ते!'

उन्होंने आवाज़ सुनी तो चौंक कर सिर का पल्ला और नीचे खिसका लिया। कुछ सेकिण्ड तक घूँघट के अन्दर से मुझे देख, घूँघट जरा ऊँचा किया और मुस्करा कर कहा—'आप हैं? मैं तो समझी कौन आ गया यहाँ?'

'और तो अभी कोई भी नही है, मैं अकेला ही हूँ, क्या इधर से कोई और भी अभी आने वाला है?'

वे ज़रा झिझकीं, फिर कहा—'आप बड़ा वैसा मज़ाक करते हैं, उस दिन तो चुपचाप बैठे थे, बड़े भोले-भाले बन कर।'

'उस दिन और बात थी, लेकिन उस दिन के बाद और बात हो गई है।'

वे हँस पड़ीं, पूछा—'क्या हो गया है?'

बातचीत का सिलसिला ज़ारी रखने के लिये मैंने पूछा—'और सब लोग नहीं हैं क्या?'

उन्होंने उत्तर दिया—'सब सिनेमा गये हैं, फ़ादर अकेले बैठक में लेटे हैं।'

'तभी इतनी आजादी मिल गई है।'

वे मुस्करा दीं।

मैंने पूछा—'तुम क्यों नहीं गईं ?'

'आप जो आने वाले थे।' उन्होंने झट से कहा और हँस पड़ीं।

मुझे उनकी बातचीत बड़ी अच्छी लग रही थी।

मैंने उन्हें छेड़ा—'तुम हँसती ख़ूब हो!'

'आप बनाते हैं।' कहकर वे ऐसे बैठ गईं, मानो रूठ गई हों।

कुछ देर रुक कर मैं बोला—'तुम तो एकदम चुप हो गईं ?'

उसी स्वर में उन्होंने कहा—'और क्या, आप तो बनाते हैं।'

मैंने सोचा, जितनी सुन्दरता इस नारी को भगवान् ने दी है, उतनी ही चञ्चलता भी। और कितना अपनापन था उनकी बातों में! और सो भी मेरे प्रति ? मैं तो उनके लिए एक अनजान ही था।

'एक पत्र देने आया था।'

'किसे ?'

'तुम्हें!'

'मुझे ? अच्छा; लेकिन किस तरह लूँ खिड़की मे जाली तनी है और शायद अन्दर आ नहीं सकते ? ख़ैर, सुना दीजिए क्या लिखा है ?'—अब की बार वे नीचे की ओर देख रही थीं, लज्जा से मुँह सुर्ख़ हो गया था, यह मैंने लालटेन की पीली रोशनी में देख लिया।

'यह तुम जानो कि पत्र किस तरह तुम्हें मिले; पर मैं सुनाऊँगा नहीं।'—मैंने कहा।

'अच्छी बात है। देखिए, पीछे वाले कमरे की खिड़की में जाली नहीं है, मैं वहाँ आती हूँ।' और वे उठ खड़ी हुईं।

मैं रसोई के आगे वाले कमरे की ओर गया। तभी वहाँ रोशनी हो गई। उन्होंने हाथ बाहर किया। मैंने पत्र दे दिया। शायद पाँच सेकेण्ड तक मैं उनके हाथ पर अपना हाथ रख सका। शरीर में सनसनी-सी हो गई। ऐसा लगा कि उन्हें अपने अङ्क में कस लूँ, लेकिन बीच में दीवार

और सींखचेदार खिड़की थी !

× × ×

पूरे चौबीस घण्टे बाद, दूसरे दिन, वहाँ गया।

उस दिन रसोई-घर में अँधेरा था, परन्तु जिस कमरे की खिड़की से मैंने उन्हें पत्र दिया था, उस खिड़की से रोशनी आ रही थी।

उधर गया तो, खिड़की के पास ही एक कुर्सी पर बैठीं वे कुछ बुन रही थीं। मैंने नमस्ते किया, तो वे हँस पड़ीं—कुछ बोलीं नहीं।

एक बार कमरा देख कर उन्होंने बॉडी से पत्र निकाल कर मेरी ओर बढा दिया और खिड़की के पास मुँह लाकर धीरे से कहा—'आपका ही इन्तजार था।'

मैंने कहा—'कष्ट के लिए क्षमा चाहता हूँ।'

उन्होंने हँस कर कहा—'आप बनाते बहुत हैं।'

गम्भीरता से मैंने कहा—'तुम बहुत सुन्दर हो।'

वे हँसीं और कहा—'बड़ी बिज़ी हूँ, अब फिर कभी।'

मैंने उनकी ओर देखा और उन्होंने मेरी ओर। तब वे चली गईं।

× × ×

मुझे याद है, उनका पत्र पढ कर मेरा साहस उनकी ओर जाने की गवाही न दे सका, क्षमा-प्रार्थना भी न कर सका।

दिन बीत गये, महीने युग के आवरण में छिप गये, वर्ष शून्य में विलीन हो गये, लेकिन उनका वह पत्र, ससार भर के परिवर्तन के बाद भी, मेरे पास सुरक्षित रूप में वैसा ही रखा है।

उनके पत्र ने मेरे हृदय पर बड़ा असर किया। जब कभी उनका ख़याल आता है, मेरा मस्तक उनकी पुण्य स्मृति मे, सङ्कोच के कारण झुक जाता है।

आप पूछेंगे, उनका यह पत्र मेरे पास क्यो है ? तो मैं इस प्रश्न का उत्तर न दे सकूँगा। यही उनका अन्तिम और पहला पत्र है। उनके

दर्शन भी इसी पत्र की प्राप्ति के समय अन्तिम थे।

उनका पत्र मैं सुनाए देता हूँ। लिखा है :—

'...............!

'आप का प्रस्ताव मुझे मान्य है। मैं इस सिद्धान्त को मानती हूँ कि मानव-मानव में प्रेम होना अस्वाभाविक नहीं है।

'लेकिन क्या आप जानते नहीं कि मेरे पाँओं में बिछुए हैं, मेरी माँग में सिन्दूर है और मैं किसी के साथ जीवन भर के लिए बँध कर आई हूँ? मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ। क्षणिक-वासनाएँ मुझे इङ्गित नहीं कर सकतीं। फिर प्रेम के तो कई रूप हैं। उनमें से पति के लिए होने वाला स्नेह और आदर मैं दे चुकी हूँ।

'स्कूल और कॉलेज की उच्छृङ्खलता लड़कियों में उस समय नहीं रहती, जब कि वे गृहिणी के रूप में किसी की विश्वासपात्री बन जाती हैं, यह बात आप भूलें नहीं। मेरे तो कम से कम यही विचार हैं। फिर 'वे' भी तो किसी स्त्री की ओर आँख उठा कर नहीं देखते, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। आशा है, आप ग़लत न सोचेंगे।'

पता नहीं, यह पत्र मेरे पास कब तक रखा रहेगा। आज तो मैं उनकी कर्तव्यनिष्ठा का पुजारी हूँ। मुझे अब पता नहीं, वे कहाँ हैं। मित्र महाशय का भी निवास-स्थान नहीं जानता।

लम्बा समय बीत गया है। दुनिया ख़ूब देखी, पर वैसी पतिव्रता-नारी दिखाई नहीं पड़ी, क्योंकि मैंने उस रूप में किसी और को देखना स्वीकार नहीं किया।

चिन्ता-मुक्त—

बलवीर ने मकान के बाहरी बरामदे मे पाँव रखा, तभी वह चिन्तित-भाव से चारों ओर एक बार दृष्टिपात कर पुनः वापस लौट पड़ा। पुराने मकान के जगह-जगह चटखे हुए किवाड़ की दरारों से हलकी-सी रोशनी आते उसने देखी, नन्हीं बच्ची की आवाज भी उसे सुनाई पडी। शायद वह अपनी माँ से खाने के लिए झपटकर कह रही थी—'बाबूदी को आने दो। तुम अमको काना नई दोगी तो वो तुमको मालेंगे।'

बलवीर ने यह नहीं सुना कि कुसुम ने क्या उत्तर दिया। थोड़ी दूर चलने पर उसने आँसू पोंछ लिये और तेज़ी से गली पार कर सड़क पर आ गया। उसके पाँव जल्दी-जल्दी उठ अवश्य रहे थे, लेकिन कभी-कभी लड़खड़ा जाते थे और वह सोच लेता था कि दिन में एक बार भी भोजन मिल सकता तो उसे यह मानसिक और शारीरिक शिथिलता सहन न करनी पड़ती।

सामने के मकान की साँकल खटखटाते ही, अन्दर से एक व्यक्ति निकला, साफ कपड़े थे, हँसमुख चेहरा और गठीला बदन। बलवीर ने एक बार सोचा कि उसीकी तरह यह भी दो हाथ, दो पैर का मनुष्य है, उसीकी तरह युवक भी है। युवावस्था सुख भोगने को ही होती है, वह सुखी भी है। लेकिन उस व्यक्ति से बलवीर में कितना अन्तर है? सुबह से बलवीर भूखा प्यासा है, उसकी पत्नी और नादान बच्ची भी भूख से तड़प रही हैं।

युवक ने पूछा—'आप किसे चाहते हैं?'

बलवीर बोला—'गङ्गाधर बाबू से मिलना चाहता था।'

युवक ने कहा—'वे तो होटल गये हैं।' और किवाड़ बन्द कर लिये। बलवीर एक ओर धीरे-धीरे चलने लगा। फिर उस ओर मुड़ गया जिधर गङ्गाधर का होटल था।

वैसे तो महीने भर से वह अपने दो-तीन मित्रों की सहायता से घर का काम चला ही रहा है, लेकिन आज घर मे सुबह से कुछ भी नहीं है। अगर कुसुम कल ही यह बता देती कि घर मे कुछ नहीं है तो प्रबन्ध करने के लिए एक दिन और मिल जाता। लेकिन कुसुम का भी दोष नहीं है। वह सोचती होगी कि इस तरह रोज-रोज घर की अवस्था का हाल पति से कहने पर सिवाय इसके कि उन्हें अधिक कष्ट हो, कोई लाभ नहीं।

और बलवीर इस दो मास के बेकारी के लम्बे समय में कितना चिड़-चिड़ा हो गया है! बात बात पर नन्हीं को डाँट देता है, कुसुम को भी उल्टी-सीधी सुनाया करता है। वह बेचारी चुपचाप सब सहन करती है। अर्धाङ्गिनी का कर्तव्य यही तो है कि पति के सुख-दुख में साथ दे! आज उस पर विपत्ति है तो उसकी पत्नी ही है जो धैर्य बँधाती है, उचाट-मन के प्रति सहानुभूति प्रकट करती है। और वह बेचारी करे ही क्या?

वह सोचता है, कुसुम तो उसके साथ दो-तीन दिन भूखी रह सकती है और कुछ न कहेगी, लेकिन भूख से तड़पती हुई नन्हीं के आँसू पोंछने की शक्ति न तो उसमें है और न कुसुम में ही। तो वह क्या करे? लेकिन इस प्रश्न पर ही विचार करने से क्या हो सकेगा? दो मास से वह मित्रों के साथ अनेक अधिकारियों के पास जाता रहा है, फिर भी नौकरी के नाम कहीं जगह नहीं।

जब होटल के कमरे मे पहुँच कर बलवीर खड़ा हुआ, तब वहाँ बैठे हुए लोगों का अट्टहास उसकी विचार-धारा को तोड़ कर गूँजता रहा! तभी पीछे से आवाज आयी—'अरे बलवीर!'

उसने पीछे घूम कर देखा। गङ्गाधर को देखकर वह मुस्कराया और

उसके पास पड़ी कुरसी पर बैठ कर बोला—'भाई, मैं तुम्हें ही तो खोज रहा था। तुम्हारे घर भी गया था।'

गङ्गाधर ने कुरसी ज़रा आगे खिसकाकर, आश्चर्य से, उसकी ओर देखते हुए कहा—'क्यों, क्या बात है?'

काँपते हुए कण्ठ से बलवीर ने कहा—'ऐसा जीवन देखने की शक्ति मुझ में तो है नहीं।'

कौतूहलवश गङ्गाधर ने कहा—'क्यों, हुआ क्या, खैरियत तो है?'

बलवीर ने कहा—'खैरियत क्या! आज सुबह से हम लोगों के पेट में अन्न का एक दाना भी नहीं पड़ा।'

गङ्गाधर ने उसकी ओर देखे बिना ही एक थाली लाने की आज्ञा होटल के अधिकारी को दी। बलवीर ने कहा—'तुम मेरे लिए खाना मँगा रहे हो, लेकिन घर पर कुसुम और नन्हीं भूखी बैठी हैं। उनसे पहले तो मैं नहीं खाऊँगा।'

गङ्गाधर ने मुस्कराकर कहा—'तुम तो खा लो, उनके लिए भी लेते जाना।'

बलवीर ने कहा—'पहले मैं नहीं खाऊँगा।'

'तुम में शक्ति भी तो नहीं है जो घर तक पहुँच सको। पहले खा लो, फिर चले जाना।' समझाते हुए गङ्गाधर ने कहा।

'तुम तो मजाक समझते हो। मैं जानता हूँ कि मुझ में शक्ति नहीं है लेकिन मैं घर तक पहुँच जाऊँगा। तुम मुझे इस समय एक रुपया दे दो।' बलवीर ने शान्त भाव से कहा।

गङ्गाधर ने होटल के अधिकारी से खाना लाने को मना कर दिया। फिर जेब में हाथ डालकर देखा कि रुपया नहीं है। उसका सुस्त चेहरा देखकर बलवीर ने करुण नेत्रों से उसकी ओर देखकर कहा—'क्या नहीं है?'

गङ्गाधर ने कहा—'है क्यों नहीं, दो मिनट रुको अभी आया, जरा

कुल्ला कर लूँ।'

बलवीर ने देखा कि गङ्गाधर कुल्ला करके मैनेजर के कमरे में चला गया। वह उठा और ऑफिस के दरवाजे पर, ज़रा हटकर, खड़ा हो गया। उसने सुना, गङ्गाधर ने ऑफ़िस से कहा—'मुझे दो रुपये दे दें। कहेंगे तो महीने के हिसाब मे दे दूँगा, या फिर कल ले लीजियेगा।'

रुपयों की आवाज के साथ ही मैनेजर की बात भी सुनायी पड़ी—'महीने के हिसाब में यह न लगाइयेगा।'

गङ्गाधर ने कहा—'तो कल सुबह ले लीजियेगा।'

बलवीर ने गङ्गाधर के पैरों की आहट सुनी, वह वहाँ से हट जाना चाहता था, लेकिन हट न सका।

गङ्गाधर ने मैनेजर के कमरे से निकलने पर बलवीर को सामने खड़े देख आश्चर्य से कहा—'तुम उठ आये?'

बलवीर कुछ न बोला। हाँ, एकबार गङ्गाधर की ओर देखा अवश्य।

गङ्गाधर उसका तात्पर्य समझकर बोला—'बात यह है बलवीर, कि मैनेजर से मेरा हिसाब चलता है।'

बलवीर फिर कुछ न बोला तो गङ्गाधर ने उसके हाथ मे दो रुपये देकर कहा—'तब तक इससे काम चला लेना। मैं दो-एक दिन में कुछ और प्रबन्ध कर दूँगा और हो सका तो, कहीं नौकरी का प्रबन्ध भी करूँगा।'

बलवीर ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—'तुम्हारा अहसान कभी.. ।'

गङ्गाधर ने बात काट कर कहा—'यह तो मेरा कर्तव्य है बलवीर, तुम सङ्कोच की बातें कहकर मुझे दुखी करते हो।'

बलवीर ने कहा—'तो मैं जाता हूँ। मेरी कुसुम, मेरी नन्हीं...! मैं जाता हूँ भाई!' और वह होटल की इमारत से बाहर हो गया।

चिन्ता-मुक्त

ठण्ड तेज हो गयी थी। बलवीर के हाथ काँप रहे थे। सड़क पर बिजली की रोशनी थी और चारो ओर धुँआ छाया हुआ था। पार्क की घड़ी ने नौ बजाये।

बलवीर ने सोचा कि नन्हीं के लिए कुछ मिठाई भी ले ले, और वह सामने की दूकान पर रुक गया। पूड़ियों और मिठाइयों की टोकरी लेकर उसने दूकानदार को रुपया दिया। थोड़े से पैसे वापस मिले, उन्हें जेब में डालकर, वह तेजी से घर की ओर चल पडा।

कभी वह सोचता, नन्हीं रो रही होगी और कुसुम उसे चुप कर रही होगी, इधर-उधर की बातें कहकर बहला रही होगी। कभी सोचता, नन्हीं माँ से झगड रही होगी, कह रही होगी—'भूक लग लई है अम्माँ, औल तुम कुत भी नई देतीं।' बलवीर को हँसी आ गई। वह सोचने लगा कि नन्हीं कितनी अच्छी है, लेकिन उसे भी अपने माता पिता के साथ ही भूखे रहना पड़ता है। फिर उसे ख़याल आया कि नन्हीं सो रही होगी और कुसुम दीपक की रोशनी मे बैठी, जी बहलाने को, कुछ पढ रही होगी या भगवान से कुछ प्रार्थना कर रही होगी। वह जायेगा, नन्हीं को गोद मे उठा लेगा, फिर सब लोग मिल कर खायेंगे। फिर खुशी-खुशी बाते करेंगे। फिर नन्हीं सो जायेगी। शायद कुसुम कुछ सोचती रहे और वह भी सोचता रहे कि आगे क्या किया जाय!

दरवाजे पर आकर उसने सुना, नन्हीं कह रही थी—'तो अम्माँ! भगवानदी छब को लोती देते हैं?'

बलवीर को हँसी आई। वह किवाड़ के पास आकर खड़ा हो गया। दरार में से झाँक कर उसने देखा—दीवार पर टँगी शङ्कर भगवान की तसवीर के नीचे, दीपक की रोशनी में कुसुम बैठी है और उसकी गोद में नन्हीं लेटी है।

कुसुम ने कहा—'हाँ बेटा, भगवान सबको रोटी देते हैं।'

नन्हीं ने कहा—'तो अम्मा ! ये भगवान हमें कुत लोती-ओती, बलफी-अलफी क्यों नहीं दे दाते ?'

कुसुम ने कहा—'तुम्हारे बाबूजी लाते होंगे अभी ।'

और कुसुम के हाथों से भागकर नन्हीं एक कोने में जा खड़ी हुई और रो-रोकर कहने लगी—'बाबूदी को दल्दी बुलाओ। अमको बौत दोल की बूक लगी है ।'

बलवीर से अधिक न देखा गया और उसने किवाड़ पर थपकी देकर नन्हीं को आवाज दी। दरार में से उसने देखा कि कुसुम और नन्हीं दोनों ही द्वार तक आये। कुसुम ने द्वार खोला और नन्हीं झट से बलवीर से चिपट गयी। भोजन की डलिया कुसुम के हाथों में रखकर उसने नन्हीं को गोद में उठा लिया।

कुसुम द्वार बन्द करके पीछे-पीछे आई। खाट पर बलवीर बैठ गया। नन्हीं ने कहा—'बाबूदी, तुम अमें छोलकल काँ तले गये थे ? अम भी बूके थे औल अम्माँ भी, पल भगवानदी ने एक भी लोती नई दी ।'

बलवीर ने हँसकर कहा—'रोटी नहीं नन्हीं, भगवान जी ने तो मिठाई भेजी है तुम्हारे लिये' ।'

लेकिन नन्हीं को क़तई लालच न हुआ और वह पिता की गोद में ही बैठी, उसके कोट में लगे बटन से खेलती रही।

कुसुम थाली में भोजन सामग्री रख रही थी। बलवीर ने पूछा—'लकड़ी कोयला क्या कुछ भी नहीं है, जो इतनी सरदी में ख़ुद भी सिकुड़ी बैठी हो और नन्हीं भी दाँत किटकिटा रही है ।'

'हैं तो, पर मैंने इसी से नहीं जलायीं कि फिर खाना काहे से बनता ?' कुसुम ने कहा।

बलवीर बोला—'तो पहले तुम आग कर लो, थोड़ा ताप लें। खाना भी खाते जायँगे ।'

कुमुम दालान मे जाकर अँगीठी में कोयले रखके जलाने का प्र

कर रही थी। बलवीर ने नन्हीं को गोद से उतार कर कहा—'देखो मेरी अच्छी-सी नन्हीं! तुम्हें जो चीज़ अच्छी लगे उठाकर खा लो।'

नन्हीं खड़ी रही, फिर कहा—'बाबूदी, अबी नईं, जब तुम बी काओ, अम्माँ बी काये, तब मैं बी काऊँगी।'

'अरे!' कहकर बलवीर ने उसे गोद में उठा लिया और कुसुम के पास दालान में पहुँचा। देखा, आग जल नहीं रही थी। तब कहा—'तेल न हो तो जरा-सा दिये में से ही ले लो।'

कुसुम ने कुछ न कहा। चुपचाप दिये से जरा-सा तेल ले लिया। दस मिनट में कोयले जलने लगे।

अँगीठी सामने रखकर कुसुम ने नन्हीं को अपने पास बिठा लिया। बलवीर और नन्हीं खाने लगीं, कुसुम ने न खाया तो बलवीर बोला—'तुम क्यों नहीं खातीं?'

कुसुम बोली—'तुम तो खाओ पहले, मैं बाद में खा लूँगी।'

बलवीर ने कहा—'साथ ही खाना पड़ेगा।' और बरफी का एक टुकडा कुसुम के मुँह में अपने हाथ से दे दिया। कुसुम मुसकराई।

नन्हीं ने बलवीर से कहा—'बाबूदी, तुमने अम्माँ के मुँह में तो गच्छा दे दिया। औल मैं अपनेईं हाथछे खा लई हूँ।'

नन्हीं की बात सुनकर बलवीर और कुसुम हँस पड़े।

बलवीर ने कुसुम से कहा—'अगर रोटियों की चिन्ता से मुक्ति मिल जाय तो हमारा जीवन कितना सुखी हो सकता है!'

कुसुम ने कहा—'तुम्हें नौकरी न मिले तो कहीं मैं ही खोजूँ। मिडिल पास हूँ ही, किसी स्कूल में दस पन्द्रह की जगह मिल सकती है।'

'अरे, तुम्हें नौकरी नहीं करनी होगी। मुझे दो-तीन दिन में काम मिल जायगा।' बलवीर ने कहा।

नन्हीं बीच में बोल पड़ी—'बाबूदी, तुमको पलछों जलूल छे जलूल नौकली मिलेगी।'

'सच्ची नन्हीं !' कुसुम ने नन्हीं से प्यार भरे स्वर में पूछा।

'छुच्ची !' नन्हीं ने कहा।

खाना समाप्त करके तीनों लेट रहे। बलवीर को कलकी चिन्ता न थी, क्योंकि एक रुपया और कुछ पैसे अभी थे, परसों काम मिलने की आशा थी, अतएव चिन्तामुक्त बलवीर खाटपर लेटने के कुछ ही देर बाद सो गया। जब ग्यारह का घण्टा बजा, कुसुम तब भी आँखे खोले छतकी ओर ताक रही थी।

पिता के पत्र—

[१]

प्रिय अनिल,

आज यहाँ से गये, तुम्हें तीन मास बीत गये हैं, परन्तु तुम्हारा कोई कुशलपत्र नहीं मिला। तुम्हारे भाई-बहन बहुत चिन्तित हैं। और मैं ? मैं पिता हूँ, मैंने बाप का बूढ़ा दिल पाया है। बाप हमेशा अपने बच्चों के भले की सोचने में ही जीवन बिताता है, चाहे बाप को कितनी ही तकलीफ हो, लेकिन वह अपनी तकलीफ अपने में ही दबाये रखता है। वह उस तकलीफ को बच्चों में विभाजित करके स्वय प्रसन्न होना नहीं जानता। मैं सोचता हूँ, एक बाप अपनी सन्तान के प्रति जो कर्तव्य पालन करता है, वही सन्तान को भी अपने बाप के साथ करना चाहिए। पुत्र को चाहिए कि यदि कोई ऐसा काम वह जान-बूझकर करता है, जिससे पिता को क्लेश होता है तो वह काम उसे कभी न करना चाहिए। तुमको जीवन भर यही सब समझाया है, फिर भी तुम उसे, समझ लेने के बाद भी, भूल जाना चाहते हो।

सोचता हूँ, गाँव के ऐसे मनोमोहक वातावरण में, जहाँ देवताओं का वास है तुम्हारा जी नहीं लगता—तुम तो शहर की बिजली और नलों के पानी पर रीझ गये हो, तुम्हें गाँव के कुएँ का पानी और कड़वे तेल के दीपक नहीं भाते होंगे। तुम तो ट्राम और ताँगों पर बैठना सीख चुके होगे, तुम्हें बैलगाड़ी की सवारी या पाँवों का चलना कैसे सुखकर हो सकता है ? लेकिन एक बार इतना तो सोच देखते कि जिस धूल में तुमने जन्म लिया था, उस धूल पर चलना वास्तव में हानिकर है भी या नहीं ?

मेरी क्या है, मैं तो जीवन भर आग में जलता रहा हूँ। तुम्हारे विछोह का दुःख यदि उस आग मे घी का काम करके उसे अधिक देर तक जलने की शक्ति दे तो वह जलेगी ही। लेकिन सहने की भी हद होती है। तुम्हें मार-पीट तो सकता नहीं, लेकिन एक पिता अपने जीते जी यह नहीं चाहेगा कि उसका पुत्र अपनी ही इच्छा से उसे ठुकरा दे। मैं तुम्हें समझाने का अधिकारी हूँ, इसीलिए समझाता हूँ। तुम जवान हो, पढे-लिखे नई रोशनी के आदमी हो। यदि भारत की प्राचीन सस्कृति के गौरव के क़ायल होगे तो समझोगे, अन्यथा जैसे अब तक मेरी सम्मतियों को तुम अपने लिए हानिकारक समझते आये हो उसी तरह समझोगे। लेकिन चूँकि भगवान् ने एक पिता के हृदय में पुत्र के लिए अधिकार और प्रेम भर दिया है, इसलिए पिता पुत्र को अतिम समय तक शुभ परामर्श ही देता है। मैं भी भगवान् की इस देन से मुक्त नहीं हूँ। मैंने भी जो एक बाप का दिल पाया है, उसमें पुत्र के लिए अधिकार बरतने और प्रेम-प्रदर्शन करने की शक्ति है।

तुम जानते हो तुम्हारी दो जवान बहने और दो नन्हें भाई हैं। मैं सिर्फ़ तीस रुपये पेन्शन पाता हूँ। गाँव में रहता हूँ। बुज़ुर्गों का मकान है, उसे छोड़ने की तबियत नहीं होती, साथ ही शहर में इतने से रुपयो से गृहस्थी का बोझा नहीं ढोया जा सकता, फिर शहर की रंगीनियों में भी जी परेशान होगा। और साथ में जवान लड़कियों को लेकर शहर में रहूँ सो भी मुझसे नहीं होगा, मैं इज़्ज़तदार आदमी हूँ। आदमी की इज्जत ही चली गई तो उसके पास रह ही क्या गया। इस इज़्ज़त को बुजुर्गों ने इतना सँजोकर रक्खा था, मेरे भरोसे उसे छोड़ गये हैं, इसलिए इसका मूल्य तो मुझे जीवन से भी अधिक समझना चाहिए।

मैंने तीन महीने से तुम्हें नहीं देखा, तुम्हारे बारे में कुछ जानता भी नहीं। कहाँ रहते हो, कहाँ खाते-पीते हो, काम मन माफिक है या नहीं, कितनी देर दफ़्तर में रहते हो, कैसे सगी-साथी हैं? यह सब बाते जानने

की इच्छा स्वाभाविक है। लेकिन न जाने क्यों, तुम इन बातों को नहीं सोच पाते कि मैं तुम्हारा पिता हूँ, मुझे अपने अन्दर और बाहर की बातों से परिचित रक्खो, अपने बारे में लिखो, कहो। तुमने कभी अपनी जिम्मेदारी नहीं समझी। तुमने नहीं सोचा कि तुम्हारे भाई-बहनों के लिए मेरे बाद केवल तुम ही हो—वे लोग तुम्हे कितना चाहते हैं, तुमने कभी यह जानने का प्रयत्न भी नहीं किया। शहर में जब पढते थे, तब क्या ऐसे ही थे ? गाँव आते थे तो भाई-बहनों को कितना प्यार करते थे, कितनी चीज़ें लाते थे—एक बार सोच ही लो। उन्हीं में घण्टों उलझे रहते थे, मुझसे बात करने की फुरसत नहीं मिलती थी। मैं यह नहीं चाहता कि तुम मेरे पाँव छुओ, मेरी आज्ञा मानो, क्योंकि मै तुम्हे समझदार समझता हूँ। लेकिन उन भाई-बहनों की ओर तो देखो, जो तुमको अपने जीवन की आशाओं का केन्द्र समझे बैठे हैं।

राजो जब पूछती है—'दादा, भैया की कोई चिट्ठी आई ?' मुक्ता जब मुझसे उलझ जाती है—'भैया क्यों नही चिट्ठी लिखते, तुम्हीं जाकर देख न आओ।' अशोक और कौशल जब कहते हैं—'दादा, भैया को लिखना कि मेरे लिए बहुत-सी किताबें लाये।' तब मेरी आँखों में पानी आ जाता है। सोचता हूँ बेटा, आज तुम्हारी माँ होती तो इस तरह तुम्हें अपने से अलग हो जाने देती ? यों तुम अपने भाई-बहनों की आशाओं को मिट्टी में मिला सकते ? मेरे दिल में दर्द है, लेकिन मैं उसे दबाये रहता हूँ, जाहिर नही करता। उस दर्द में खुद खो जाना मन्ज़ूर है, लेकिन नन्हे बच्चों के दिलों में उस दर्द का बीज बोना हरगिज मन्ज़ूर नहीं।

मुक्ता की बात सोचने लगता हूँ। वह ठीक ही कहती है, मैं तुम्हारे पास आऊँ। तुमसे पूछूँ कि तुम हमारे बेटे होकर हमारे ही दिल पर यह हथौड़े क्यों मार रहे हो ? लेकिन मैं कैसे आऊँ, अकेला आ नहीं सकता और सबको लाता हूँ तो तुम्हारी माँ के लगाये हुए तुलसी के ये

पौधे सूख जायँगे। उनके जीवन की अन्तिम आशा को अपने जीते जी सूखने नहीं देना चाहता।

जब तुम पढ़ते थे, तब क्या इसी तरह महीनों चिट्ठी लिखे बिना रह जाते थे ? मैं पूछता हूँ, क्या खुदमुख़्तार होते ही बेटा अपने बाप को भुला देना अपना अधिकार समझता है ? क्या यह व्यवहार उसे शोभा देता है ? क्या मनुष्य के संस्कार ऐसे ही हैं कि वह समय के थपेड़े खाकर इतना दुःख भोगे, जितना मैं भोग रहा हूँ ?, मैं कुछ कहना नही चाहता। तुमने मेरे दिल पर बहुत ज़ख्म किये हैं—अब तुम उन पर मिरचे छिड़क रहे हो। मैं एक बार यही पूछना चाहता हूँ कि जो व्यवहार तुम मेरे साथ कर रहे हो, यही व्यवहार क्या एक बेटे को अपने पिता के साथ करना चाहिए ? क्या एक भाई को अपने भाई-बहनों के साथ यही सलूक करना चाहिए, जो तुम कर रहे हो ? तुमने तो मेरी सारी आशाओं को ही मिट्टी में मिला दिया। शहर में पढ़ते थे, तब तुम्हारे साथियों के पत्र आते थे कि अनिल बिगड़ रहा है, तब मैं उन्हें डाँटकर पत्र लिखता था। लेकिन आज मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ कि क्या वे बातें, जो तुम्हारे साथी लिखते थे, वास्तव मे ठीक नहीं थीं ? क्या तुम रुपये पाने के लिए ही इतने लायक़ बनते थे ? क्या उस समय भी तुम मुझसे यों ही घृणा करते थे ?

तीन महीने कम नहीं होते। तीन महीने तुम लगातार भुला कैसे सके ? यही समझ में नहीं आता। तीन महीने क्या ? जो तीन महीने तक भुलाये रख सका, वह जीवन भर के लिए भूल भी सकता है।

मैं चाहता हूँ तुम अपने दिल की बात बता दो। आख़िर, ऐसी कौन-सी बात है जिससे तुम अपने सगे बाप और भाई-बहनों को दुश्मन समझने लगे हो ? यदि तुम दिखाने को ही पत्र लिख देते तो भी जी शान्त हो जाता, लेकिन भगवान् जाने तुम्हें क्या हो गया है ? क्या तुम्हें गाँव की भी याद नहीं आती ? तुम तो घण्टों नदी के किनारे बैठे-बैठे दूर बसे

हुए झोंपड़ों पर पड़ती हुई चाँद की किरणें देखा करते थे। बरगद की छाया में तुमने गरमियों की छुट्टियों की न जाने कितनी जलती हुई दोपहरें बिताई थीं। आज प्रकृति भी तुम्हें याद करती है। सब सुनसान-सा हो गया है।

कौशल और अशोक तुम्हें कई पत्र डाल चुके हैं, पर उन्हें भी तुमने उत्तर नहीं दिया। इन बच्चों ने तो कोई अपराध नहीं किया बेटा! और जो तुम मुझे अपराधी समझते हो, तो तुम्हारे भाई-बहनों के आँसू देखकर, मैं तुम्हारे पाँव छूकर अपने अपराधों की क्षमा माँगने को तैयार हूँ। अब अधिक मुझसे नहीं लिखा जाता। जी चाहता है, जी भरकर रो लूँ।

तुम्हारा— दुखी पिता।

[२]

बेटा अनिल!

सदा सुखी रहो।

कुछ दिन पहले तुम्हें एक लम्बा पत्र भेजा था, परन्तु तुमने उसका भी उत्तर नहीं दिया। सोचता हूँ, तुममें इतना परिवर्तन कैसे और क्यों हो गया? एक वह दिन भी था, जब तुम गर्व से मस्तक ऊँचा करके कहा करते थे—'दादा! मुझे बड़ा हो जाने दो, फिर तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होने दूँगा। पढ़ लिखकर कोई अच्छी-सी नौकरी करूँगा। तुम्हें ख़ूब सारे रुपये भेजा करूँगा। फिर तुम भगवान् का भजन किया करना, फिर तुम्हें कमाने-धमाने की कोई चिन्ता न करनी पड़ेगी। मुक्ता जो तुम्हें रात-दिन सारियों के लिए तंग करती है, फिर मैं उसके लिए इतनी सारियाँ ला दूँगा कि वह बदलते-बदलते थक जायगी। राजो तुम्हें तंग करती है कि शहर में पढ़ेगी, फिर मैं उसे जब तक वह चाहे शहर में पढाऊँगा। अशोक और कौशल दूसरे बच्चों के पास खिलौने और किताबें देखकर तंग करते हैं, फिर मैं उनके सामने इतने खिलौने और किताबें इकट्ठी कर दूँगा कि उन्हें बात करने की भी फ़ुरसत न मिलेगी।

और दादा, तुम ऊँचे से पलँग पर बैठे-बैठे हम सब के यह खेल देखा करना। खुश हुआ करना और मुझे शाबाशी दिया करना कि मैं ऐसा हो सका, जिससे तुम सुखी हुए। मेरे भाई-बहन सुखी हुए।' तुम्हें ये बातें याद न हों अनिल, लेकिन मैं कुछ भी नहीं भूला। यही बातें याद करके तड़पता रहता हूँ। न जाने कैसा लगने लगता है। मैं पूछता हूँ, तुम्हें हो क्या गया है? तुम इतने बदल कैसे गये? क्या शहर में ऐसा भी कुछ होता है, जो जवान लड़कों को उनके माँ-बाप से अलग कर देता है, भाई-बहनों और दूसरे स्वजनों को भुलाने में सहायता देता है? तुम मेरे मन में उठते हुए तूफान को समझ पाते तो देखते कि उसमें कैसा हाहाकार मचा हुआ है। तुम पिता का दिल पाते तो तुम्हें मालूम होता कि एक पुत्र के विछोह का कितना बड़ा सदमा होता है। तुमने मेरी स्नेह-भरी आत्मा को अपने निर्दय पाँव की ठोकर से कुचल दिया है अनिल!

आज तुम्हारी माँ नहीं हैं, वर्ना मैं उनसे कहता—'यह है तुम्हारा अनिल। इस अनिल ने ही हम सब को वह सदमा पहुँचाया है, जो जीने पर भी मृत्यु की यन्त्रणा से बेचैन किये हुए है। यह है वह अनिल, जिसे तुमने अपने घर का, सदा जलनेवाला, दीपक समझा था। जिसके लिये तुमने दुनिया को ठुकरा दिया था, जिसमें तुम अपना और परिवार के उन्नत-भविष्य का स्वप्न देखा करती थीं, जिसके रोने पर तुम रोया करती थीं, जिसके बीमार होने पर खुद मरने को तैयार हो जाती थीं। देखो, वही अनिल आज क्या बन गया है!' लेकिन शायद वे यह सब देखने और सुनने की हिम्मत नहीं रखती थीं, इसी से तो चली गई। मैं हूँ, जब तक जीवित रहूँगा, दिल दबा-दबाकर रो लिया करूँगा। मुझमें रोने की शक्ति है, लेकिन इन मासूम बच्चों का रोना देखने की शक्ति नहीं है।

मैं तुमसे पूछता हूँ, बता दो न, यह सब क्या है? क्यों यह परिवर्तन तुममें हुआ? क्यों नहीं इस घर की याद तुम्हें आती?

इतने दिन तक हम लोग आशा किये रहे, लेकिन अब तो सूखे हुए आँसू भी फूट निकलना चाहते हैं। तुम इतना ही बता दो कि तुम्हारी याद में रोते हुए इन बच्चों को कैसे चुप करूँ ?

गयादीन पडित मिले थे, कहते थे, अनिल अब तुम्हारा नहीं रहा। मैं कहता हूँ, उस समय इच्छा हुई कि क्या कर डालूँ। लेकिन सोचा, कहनेवाले कहते ही हैं। मैं यही सोच रहा हूँ कि जिस अनिल को हमने जीवन दिया है, जिस अनिल को अपने पाँवों पर खड़े होने की शक्ति हमने दी है, जिसे पढा-लिखाकर इतना बडा किया है, वह कैसे हमें भुला सकेगा ? उसे अधिकार भी नहीं है। हाँ, अनिल ! खूब सोच-समझ लेना, मैं पिता हूँ, तुम मेरे पुत्र हो। तुम्हें जीवन भर मेरी आशाओं का पालन करना है। जिस तरह अभी तक तुम मेरे इशारों पर चलते रहे हो उसी तरह, जहाँ तक मैं सही कहता हूँ तो, उन पर ही चलने मे अब भी, तुम्हारी भलाई है, अन्यथा एक दिन पछताओगे, माथा पकड़कर रोओगे, और पश्चात्ताप करने के लिए तड़पोगे। तुम रोओगे तो मेरी तरह पुचकारकर कोई तुम्हारे आँसू पोंछने न आयेगा। लोग तुम्हें दुतकारेंगे—कहेंगे, पिता को ठुकरानेवाला पापी है।

इस समय मेरा जी भारी है, सिर मे दर्द है और देह टूट सी रही है। अगर तुम्हारे दिल में अपने पिता और भाई-बहनों के लिए ज़रा भी स्नेह होगा, तो कुशलपत्र तुरन्त भेजोगे। अन्यथा ये दो शब्द भी फिर न पढ पाओगे। कौन जाने किस क्षण प्राण निकल जायें !

आशा है और अधिक न रुलाओगे।

तुम्हारा—बूढा बाप।

[३]

अनिल !

तुम्हारा लिखा पत्र, तुम्हारे यहाँ से जाने के ठीक सात महीने बाद, आज मिला, देखकर जी उठा। सब बच्चे फूले न समाये। लेकिन जब

पत्र पढ़ा तो रही सही जान भी निकल गई। क्या तुम गाँव से नौकरी मिलने का बहाना करके इसीलिए गये थे कि वहाँ कांग्रेस में काम करो। हमारे ख़ानदान में सभी सरकार के ख़ैरख़्वाह रहे हैं, लेकिन तुमने मुझे मिट्टी में मिलाकर ही छोड़ा।

तुम छः महीने तक जेल की हवा खाकर निकले हो। शहर के कांग्रेसियों ने तुम्हारा स्वागत किया हो, फूल-मालाएँ पहनाई हों, लेकिन इस गाँव में तुम्हें कोई एक घूँट पानी भी न पिलायेगा। तुम मुझसे भी झूठ बोले। क्या यही पचास रुपये की नौकरी मिली थी ? तुम पढ़-लिखकर भी इतना न समझ पाये कि जेल जानेवाले आदमी की ओर लोग आँख उठाकर भी नहीं देखते।

राजो कहने लगी—'अब भैया भी गांधीजी की तरह जेल हो आया है। उसकी भी सब लोग जय बोला करेंगे।' मैं गुस्से में था ही, जी भरके पीटा। मुझे कुछ नहीं, मर जाऊँगा, चला जाऊँगा, लेकिन तुमने जो अपनी जिम्मेदारी न समझी, इसी का अफ़सोस रहेगा।

जब तक मैं जीवित हूँ, तुम इस घर में क़दम न रखना। मेरे मरने के बाद यदि उचित समझो तो भाई-बहनों को सँभालना।

जी चाहता था तुम नौकर हो जाओ, शादी कर दूँ, सब सुखी हो जायँ। लेकिन यह सुख भगवान् ने हममें से किसी के भी भाग्य में नहीं दिया।

अब तुम मुझसे पत्र पाने की आशा भी न करना, न तुम ही पत्र लिखना। अब मेरे जीवित रहने तक इस घर से तुम्हारा नाता नहीं है।

तुम्हारा—कोई नहीं।

कवि-हृदय—

गोमती की धवल धारा में नाव धीरे-धीरे एक ओर बढ रही थी। किनारे खड़े शान्त पेड़ों की छाया लहरों के बीच काँप रही थी। पास ही एक छोटा-सा टूटा-फूटा मन्दिर था, लहरें उससे छूकर आगे बढ रही थीं।

साँझ बीत गई, किनारा काला-काला हो गया। नदी का पानी तब भी चाँदी-सा चमक रहा था। बादलों से पतला-सा चाँद खेल रहा था। दूर की सड़कों पर जलती हुई रोशनी का क्षीण प्रकाश दीख रहा था। नाव चल रही थी।

'नाविक, तुम देख रहे हो चाँद की हलकी-हलकी रोशनी इन पेड़ों के बीच से निकल कर तुम्हारी नाव छूने के लिए कितनी बेचैन हो उठती है। नाव बढ़ रही है, लेकिन रोशनी उसे छोड़ना नहीं चाहती। दुनिया भर के सघर्ष के बीच से निकल कर आती है। लेकिन सघर्ष के बिना जीवन भी व्यर्थ है नाविक! सघर्ष की चिन्ता न होती, सघर्ष के लिये तैयार न होती तो शायद यह नाव छूने की भी उसे लालसा न होती।' उसने नाविक से कहा।

नाविक बोला 'जी!'

वह जानता था कि यह बाबू रोज आते हैं। अजीब प्रकृति के आदमी हैं। बाल बिखरे रहते हैं, सरदी गरमी की चिन्ता नहीं। तबियत आती है तो बीच में नाव रुकवा देते हैं, कभी उन पेड़ों की डालें पकड़ कर नाव रोक लेते हैं। फिर जैसे उनसे बाते करने लगते हैं। हँसमुख भी बहुत हैं, लेकिन कुछ सनकी से मालूम होते हैं। ऐसी बात भी नहीं हैं। सनकी होते तो इतने ज्ञान की बाते कैसे करते! इन्हें यह भी चिन्ता नहीं रहती कि रात कितनी बीत गई है।

उस दिन ही दो बजे जब उसने खुद कहा था तब गये थे। और आज भी ग्यारह बज रहे हैं। लेकिन उसकी मेहनत का पैसा दे देते हैं, और उसे क्या चाहिए !

'नाविक !' कुछ देर बाद उसने पुकारा।

'जी सरकार !' नाव के दूसरे कोने पर बैठे हुए मल्लाह ने डाँड़ को ठीक से पकड़कर फलालेन की चादर को बदन से लपेटते हुए कहा।

'तुमने देखा नाविक, सफेद बादलों के टुकड़े चाँद को कैसे छिपाये ले रहे हैं ?' वह बोला।

मल्लाह सोच रहा था, यह जवान तो हैं लेकिन बच्चों जैसी बातें किया करते हैं। जाने बिचारे कहाँ रहते हैं, कहाँ खाते-पीते हैं ? घरबार होता तो क्या रात-रात भर नाव पर थोड़े ही पड़े रहते ! और इन्हें सरदी भी नहीं लगती ! सरदी तो लगती ही होगी, लेकिन शायद बहुत ग़रीब हैं। ग़रीब नहीं होंगे, गरीब होते तो इस तरह नाव में बैठे-बैठे घूमते और उसे इतने पैसे रोज देते हैं सो कहाँ से देते ?

'क्यों बीत रहा मेरा जीवन,
लहरों का देख-देख सपना ?'

नाविक सुन रहा था, बाबू जी ने रोज़ की तरह फिर तान छेड दी थी। गाते तो बहुत अच्छा हैं। ऐसा लगता है जैसे दिल मे दर्द भरा हो, कठ रोता-सा जान पड़ता है। उस दिन गा रहे थे तब तो उसकी भी आँखे भर आई थीं। बाबू जी कितने मस्त आदमी हैं, इनकी ज़िन्दगी कितने मज़े में कट रही है !

'जीवन झूठी-सी आशा है,
सपना भी हो न सका अपना।'

कभी-कभी तो बाबूजी कैसी बच्चों जैसी बातें करते हैं और कभी-कभी इतने ज्ञान की बातें कि बस जी चाहता है कि दुनिया के सब जजाल छोड़-छाड वैरागी हो जाय—नाविक सोच रहा था।

गाना बन्द करके उसने शाल को गले में लपेट लिया और नदी के पानी को एक हाथ से उछालते हुए मल्लाह से पूछा—'नाविक, तुम्हारे बच्चे तुम्हारी याद करते होंगे ?'

नाविक चुप रहा। उसने फिर पूछा—'तुम शाम से ही मेरे साथ हो, तुमने भी खाना न खाया होगा ?'

नाविक चुप रहा। वह कहता गया—'तुम्हारी बीवी तुम्हें याद करती होगी नाविक ?'

नाविक सुन रहा था। वह कहता गया—'कैसी तेज़ सरदी पड़ रही है। बदन काँप रहा है और यह तीर-सी हवा है कि कलेजे को छुये ले रही है। नाविक, तुम्हे सरदी नहीं लगती ? तुम्हारे बीवी-बच्चे काँपते होंगे, कहीं सरदी न लग जाये उन्हे !'

नाविक ने कहना चाहा था कि सरदी है ही, पैसा है नहीं, तो क्या करे वह ? लग जायेगी तो लग जाये। लेकिन अकस्मात उसके मुँह से निकला—'आपको भी तो सरदी लगती होगी सरकार !'

'नहीं नाविक ! मुझे सरदी झेलने की आदत पड गई है।' युवक ने उत्तर दिया।

नाविक चाँद की हलकी छाया में युवक को देख रहा था, शाल गले में पड़ी थी, दोनों पैर मिले हुए थे। पीछे को हत्थी टेके वह आकाश की ओर देख रहा था। हवा के स्पर्श से बालों के गुच्छे कन्धों को छू रहे थे। नाविक ने पूछना चाहा कि वह क्या करते हैं, लेकिन जिस तरह इतनी बार यह प्रश्न करने की हिम्मत नहीं पड़ी थी, वैसे ही इस बार भी नहीं पूछा।

युवक ने कहा—'तुम मेरी सरदी के बारे में पूछते हो लेकिन उन हजारों भाई-बहनों और मासूम बच्चों की ओर किसी ने देखा जो कडाके के शीत में अरहर के पत्तों की तरह सिकुड़-सिकुड़ कर मर जाते हैं। जिन्हें कई-कई दिन तक चने का एक दाना भी नहीं मिलता। नाविक
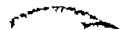
मैंने एक बूढ़े को अपनी आँखों से मरते हुए देखा था, परसों ही। नखास के पास एक गली है। मैं अपने एक दोस्त के यहाँ जा रहा था, गली में ऊपर की सड़क के पुल के पास, नाली में, गठरी की तरह ठिठुरा हुआ वह बूढा शायद उस समय जीवित था, लौटकर आया तो मर चुका था। वह भी एक आदमी था, मैं भी आदमी हूँ। समाज मेरी इज्ज़त करता है। मुझे बहुत कुछ समझता है, लेकिन मानव नहीं समझता। मानव को पेट के लिए चाहिए, तन ढकने के लिए चाहिए।'

नाविक ध्यान से उसकी बातें सुन रहा था, कुछ-कुछ समझ भी रहा था। युवक अब सीधा तनकर बैठ गया था, शाल कन्धे पर पड़ा था, सीना खुला था, नाविक ने सोचा कहीं इन्हें सरदी न लग जाये।

युवक कहता गया,—'लेकिन लोग मुझे मानव नहीं समझते। मुझे कवि समझते हैं। मुझे समाज और राष्ट्र का निर्माता कह कर गुमराह करना चाहते हैं। मुझे भुलावा देना चाहते हैं। लेकिन मै जानता हूँ *कि मेरे पेट है, खाने के लिए मुझे चाहिए ही। मेरे तन पर प्रकृति* का कोप न हो इसलिए कपड़े भी मुझे चाहिएँ। और यह लोग मुझे कहते हैं कवि।'

नाविक सुन रहा था। सोच रहा था, शायद उसके बाबू जी आज किसी से लड़कर आये हैं या किसी ने इन्हें खरी-खोटी सुना दी है। लेकिन इनकी बोली में कितना रस है। शायद गुस्से में बात कर रहे हैं। लेकिन स्वर कितना स्वाभाविक है। तब चाँद की बातें कह रहे थे, बच्चों जैसी। फिर कोई अच्छा-सा गीत गाने लगे थे। और अब तो यह कुछ तकलीफ जैसी बातें कर रहे हैं, जैसे उस दिन पार्क में किसी ने कहा था, जाने कौन थे वे, भीड़ कितनी थी उस दिन। अभी अगर शहर में ख़बर हो जाये तो यहाँ भी भीड़ लग जाये। लोग खुश हो होकर तालियाँ पीटें।

युवक कहता ही गया—'नाविक, सुना तुमने लोग मुझे कवि कहते

हैं। मेरी कविताएँ सुनकर तालियाँ पीटते हैं। पान-सिगरेट के लिए भी पूछते हैं। लेकिन जब मैं मंच पर ठिठुरता हुआ, इस सरदी में एक कुरता पहने, खड़ा होता हूँ तो तालियाँ न बजाकर कोई मुझ से यह नहीं पूछता कि मैंने खाना खाया कि नहीं अथवा मेरे परिवार वाले कैसे हैं? मुझे सरदी लग रही है, यह देखकर भी कोई धन्नासेठ नही पसीजता। लोग मुझे कवि कहते हैं, मानव नहीं कहते।'

नाविक ने युवक का अट्टहास सुना। वह समझ रहा था कि इन्होंने शायद अपने कपड़े-लत्ते किसी को दे दिये हैं।

युवक धीरे से बोला—'जीवन भी कैसा भयानक अभिशाप है नाविक!'

आकाश काला हो चला था, चाँद छिप गया था। चारों ओर बादल छा गये थे—काले-काले। नदी की लहरें बनती-बिगड़ती बढ रही थीं। हवा हलकी पड़ गई थी, लेकिन सरदी से दाँत किटकिटा रहे थे।

'सरकार, मौसिम अच्छा नहीं है।'

'तो नाव घुमालो।'

नाव घूमकर विपरीत दिशा में चलने लगी।

'पुल कितनी दूर है नाविक?'

'दो मील होगा साहब।'

'इतनी दूर क्यों चले आये?'

'आप ही ने तो कहा था कि आगे बढ़ो।'

युवक चुप हो गया। नाव चलने लगी।

कुछ देर बाद युवक काँपने-सा लगा, तब उसने शाल को चारों ओर ठीक से लपेट लिया। फिर नाविक से पूछा—'क्या बजा होगा?'

'बारह से कम न होंगे।' नाविक डाँड़ चला रहा था।

'सुनो, नाविक!' युवक कुछ धीमे स्वर में बोला—'पुल पर चाय की कोई दुकान है?'

'अब बारह बजे कौन दुकान खुली होगी सरकार ?' नाविक ने कह दिया ।

युवक चुप हो गया । फिर जेब से सिगरेट निकाली, पूछा—'सिगरेट पियोगे ?'

'सरदी तो लग रही है, पिलायें तो कुछ गरमी आ जाय ।' नाविक ने कहा ।

युवक उठा तो नाव डगमगाने लगी । नाविक से कहा कि वह सिग-रेट देने आ रहा है । नाविक चुपचाप डाँड़ चलाता रहा । युवक ने अपने हाथ से ही उसके मुँह में सिगरेट लगा दी, फिर पहले उसे जलाया फिर उसी तीली से अपनी सिगरेट को । तब यथा-स्थान आकर बैठ गया । चार छः कश लगाकर पूछा—'गरमी मालूम हुई ?'

धुआँ छोड़कर नाविक बोला—'जी सरकार !'

काले आकाश की ओर धुआँ उठ रहा था । कश लेकर धुआँ छोड़ते हुए युवक ने कहा—'नाविक, यह धुयें के तार देखे तुमने ? आदमी का जीवन-सूत्र इसी तरह बिखरकर शून्य की सीमा में अदृश्य हो जाता है । और हम देखते सब कुछ हैं, समझते कुछ भी नहीं ।'

नाविक सिगरेट का धुआँ उड़ा रहा था । एक हाथ में डाँड़ थामे था । नाव प्रवाह में पड़कर धीरे-धीरे बढ़ रही थी ।

युवक ने फिर पूछा—'एक बात पूछूँ नाविक ?'

नाविक ने चौंक कर कहा—'पूछिए ।'

युवक बोला—'तूम्हारे घर में बच्चे हैं, बीवी है, भाई है, बहन है । इन सबके प्रति वास्तव में तुम अपना क्या कर्त्तव्य समझते हो ?'

नाविक ने सहज भाव से कहा—'आपने यह सवाल बहुत बार पूछा है बाबू जी ! कर्त्तव्य क्या है, यह तो हम समझते नहीं, लेकिन यह है कि सबको खिलाने-पिलाने और कपड़े-लत्ते का भार तो हम अपने ऊपर समझते ही हैं । और किसी भी तरह मेहनत-मज़दूरी करके गुज़र हो ही जाती है ।'

युवक कुछ नहीं बोला। डाँड की 'छप-छप' आवाज़ आ रही थी, नाव चल रही थी। युवक ने सिगरेट के समाप्त होते हुए टुकड़े से दूसरी सिगरेट सुलगाई और पूछा—'यहाँ मगर भी हैं?'

'यहाँ तो नहीं, तीन-चार मील दूर हैं।'

'किनारा कितनी दूर है?'

नाविक को हँसी आगई, कहा—'किनारा तो सामने ही है बाबू!'

'नहीं, किनारा नहीं, पुल कितनी दूर है?' युवक ने पूछा।

'पुल तक पहुँचने में अभी घण्टा भर लग जायगा सरकार!' डाँड़ तेज़ी से 'छपाक्-छपाक्' कर रही थी। नाव की चाल तेज हो गई।

युवक ने सिगरेट के धुयें को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाकर मुट्ठी भर ली, फिर मुट्ठी खोल दी और नाविक से पूछा—'तुम्हारी सिगरेट ख़त्म हो गई माँझी? और ले जाओ, आओ।'

वह धीरे से चलकर आया और सिगरेट जलाकर अपनी जगह वापस पहुँच गया। युवक ने पूछा—'तुम्हें सिगरेट कैसी लगती है?'

नाविक वैसे ही बोला—'आप लोग जो रोज पीते हैं, सो समझ नहीं पाते; हम भला क्या जानें!'

युवक बोला—'अच्छा, यह नाव कितने की ली तुमने?'

'पता नहीं सरकार! बाप-दादों की बनवाई हुई है।'

युवक आश्चर्य से बोला—'अच्छा!' नाविक चुप रहा। युवक ने फिर पूछा—'नाविक, तुम्हें इससे भला क्या मिलता होगा! चलो, हम तुम मिल कर चोरी करें।'

नाविक ने सुना, उसके कान खड़े हो गये। वह समझा, या तो यह बाबू सचमुच कोई चोर ही है और या पुलिस का आदमी, तभी तो रात-रात भर घूमता है।

'चुप क्यों हो गये?'

'सरकार आप कैसी बातें करते हैं! हम ग़रीब इसलिए थोड़े ही

हैं कि चोरी करे। हम ग़रीब हैं मेहनत करने के लिये। आज तो आप जैसे हमारी जाँच कर रहे हो।'

'नाविक, तुम्हारी आत्मा विशाल है। तुम मुझे जाने कैसे लगते हो!' युवक ने कहा। नाविक सोचने लगा ज़रूर बाबू ने उसकी परीक्षा ही ली है।

'एक बात और पूछूँ नाविक, तुमने कभी किसी को प्रेम किया है?'

'अब जो आप पूछते ही हैं तो बीबी-बच्चों और घर वालों के सिवाय मैंने तो किसी को प्रेम नहीं किया।'

'नहीं नाविक! मै पूछ रहा हूँ, किसी ख़ूबसूरत लड़की को देखकर तुमने यह नहीं सोचा कि इसकी शादी तुम्हारे साथ होती!'

'यह तो नहीं सोचा। पर कालेज की लड़कियाँ बहुत चुलबुली होती हैं सरकार, शादी के बारे मे कहीं सोचता तो वे क्या सोचतीं? कहतीं, ज़मीन का कीड़ा चाँद को छूने चला।'

'नहीं नाविक! मानलो कोई लड़की आज तुमसे शादी करने को राज़ी हो जाय तो करलो?'

नाविक के स्वर मे लज्जा का भाव था, वह बोला—'अब तो मैं शादी भला क्या करूँ सरकार! बुढ़ापा आने मे क्या देर है अब, और घर में दो बच्चे हैं, उनकी माँ भी है।'

युवक चुप रहा तो थोड़ी देर बाद माँझी धीरे से बोला—'आप तो बनाते हैं बाबू जी!'

युवक हँस पड़ा, कहा—'नहीं नाविक, बनाता नहीं! सोचता हूँ, हमारे जैसे दिल तुम्हारे भी हैं। हम सभ्य हैं, शहर में रहते हैं इसलिये ही हमें दुनिया भर की बातें करने का अधिकार है क्या? और तुम ग़रीब हो, मेहनत करते हो सो तुम्हे कुछ नहीं है—यह बात नहीं होनी चाहिए।'

युवक चुपचाप कुछ गुनगुनाने लगा। माँझी सोच रहा था, यह बाबू अजीब तरह के हैं। रोज़ जाने कहाँ से ढेर सारी बातें इकट्ठी करके

ले आते हैं। बोली में कितना रस है। यों सैकड़ों बाबू आते हैं पर ऐसा आदमी तो उसने कभी नहीं देखा।

युवक गाने लगा—

'नैया मेरी बड़ी पुरानी, दूर किनारा।'

माँझी तन्मय होकर सुन रहा था। युवक इस लाइन को जितनी बार कहता, माँझी उतनी ही तन्मयता से, समझने की कोशिश करते हुए, सुन रहा था। नाव की चाल धीमी-सी पड़ी तो फिर डाँड़ तेजी से 'छपाक्-छपाक्' करने लगे। धीरे-धीरे हवा फिर तेज़ हुई, काले और सफेद बादल आकाश में एक छोर से दूसरे छोर तक छाए थे।

'माँझी थोड़ा श्रम भी करलो
जल्दी जल्दी डाँड़ चलाओ।
आने वाला है तूफान भयंकर देखो!
दीख न पड़ता कोई तारा॥
नैया मेरी बड़ी पुरानी, दूर किनारा।'

और माँझी ने सचमुच डाँड़ तेजी से चलाना शुरू किया, नाव की चाल तेज हो गई! दूर पुल दीखने लगा। बिजली के लट्टुओं की धुँधली रोशनी चमक रही थी। माँझी मज़े में झूम-झूम कर डाँड़ चला रहा था। युवक गाता जा रहा था—

'माँझी, इतने बेसुध मत हो—
तूफानों की इस थपेड़ में,
डाँड़ तुम्हारा एक सहारा।
नैया मेरी बड़ी पुरानी, दूर किनारा।'

नाविक होश में आगया। वास्तव में तूफान के आसार थे। हवा तेज़ हो गई थी, लेकिन पक्ष में थी। नाव ख़ूब तेज़ चल रही थी। पुल अभी बहुत दूर था, वैसे ही बिजली की धुँधली रोशनी अब भी दिखाई देती थी।

सिन्दूर की लाज

युवक बेसुध-सा, गाये जा रहा था—

'आँख खोलकर, सँभल सँभल कर,
आगे बढ़ते जाओ माँझी !
थक मत जाना, बढ़ते जाना,
जगते रहना, सो मत जाना।
मत होना अधीर तुम माँझी !
चाहे बढ़ता ही जाये काला अँधियारा ॥
नैया मेरी बड़ी पुरानी,
क्या चिन्ता है दूर किनारा।'

युवक चुप हुआ। सिगरेट निकाली। नाव तेज़ी से जा रही थी। माँझी के हाथ कसरत कर रहे थे। हवा तेज़ थी। पानी में डाँड़ चल रही थी, 'छपाक्-छपाक् !'

'कैसा लगा गीत माँझी ?'

'पुल आ गया सरकार !'

'तुम बहुत तेज़ लाये।'

'आप गीत न गाते तो अभी कहना पड़ता, तीन फर्लाङ्ग दूर है।'

युवक हँसा, नाव किनारे आ लगी। हवा तेज़ हो गई थी। नाविक बोला—'इस सरदी में कहाँ जाओगे सरकार ! रात भी आधी बीती है। चलो मेरी झोंपड़ी में चलो, सबेरे चले जाना।'

युवक बोला—'नहीं भाई, मुझे जाना तो होगा ही। हाँ, आज पैसे नहीं हैं। तुम कल ले लोगे ?

नाविक का मन छोटा-सा हो गया। ठीक भी था, कड़कड़ाती हुई सरदी में इतनी रात तक पैसों के लिए ही उसने मेहनत की थी। फिर भी विवश होकर उसने कहा—'नहीं हैं तो कल ही सही।'

युवक ने उसका भाव देखा, समझा, बात भी सुनी। फिर बिना कुछ विचार किए ही सीने से लिपटी हुई शाल उतार कर माँझी के सिर पर

डाल कर भाग गया। माँझी ने कहा—'सरकार सरदी बहुत है, पैसों की चिन्ता मत करो, शाल लेते जाओ।'

पर अँधेरे में उसे कुछ न दिखाई दिया। वह नाव पर आकर बैठ गया। नाव धारा को काटकर दूसरे किनारे की ओर बढ़ चली।

रोशन—

१

आँधी-सी अन्धी भावनाओं ने अँगड़ाई लेकर एक बार उन आँखों मे जो नशा भर दिया था, उसकी मस्ती शादी होने के बाद भी, रोशन के रोम-रोम में, अभी तक, बाक़ी थी। रोशन ऐसी थी, जिसकी आँखों के लाल डोरे लाज की सीमा में बिखर कर सिमटे नहीं थे। वह ओठों-सी मीठी और दिल जैसी साफ़ थी। सुन्दर ऐसी थी, जैसे गुलाब का ताज़ा खिला हुआ फूल हो; हँसते, इठलाते, मस्तीभरे अठारह पीले वसन्त उसकी भावनाओं की चादर पर सोये हुए थे।

अल्हड़, आवारा और शराब की घूँटों पर दिल लुटाने वाले हमीद के साथ उसका ब्याह हुआ था। जिस हमीद ने उच्छृङ्खलता से परे प्यार को जाना-बूझा न था, उस हमीद की दुनिया में रोशन पवित्रतम आशाओं की ज्योति लेकर आई थी। उसने सोचा था कि हमीद के दिल में जो अँधेरा छाया हुआ है, वह उसे दूर कर सकेगी। लेकिन रोशन नहीं जानती थी कि उसके दीपक की रोशनी हमीद के मन का अँधेरा दूर न कर सकेगी। उसे यह ज्ञात न था कि हमीद का हृदय प्रेम का प्रतिदान देने की क्षमता नहीं रखता। वह तो अदा से जिस जवानी को उछालता आया है, उस जवानी के रङ्ग में ऐसा रँग गया है कि उसकी लत कभी छूटने वाली नहीं।

हमीद लूटना जानता है, दुनिया को भी उसने उसी तरह लूटा है, जिस तरह वह दिल को लूटा करता है। वह डाकू है, लूट कर छोड़ देता है, बेहाल कर देता है। दुनिया उजाड़ने मे ही उसे आनन्द मिलता है। उसके हृदय में तृप्त होने की कोई कामना शेष नहीं है। क्षणिक

आनन्द और वासनाओं की शान्ति के लिए, किसी के कहने से, नमाज़ भी पढ लेता है, लेकिन वह इसकी आवश्यकता कभी नहीं समझता। देखने मे हमीद स्वस्थ और सुन्दर है। जुआ खेलने से उसे जो कुछ मिलता है, वही उसकी रोज़ी है। जुए में जब वह हारता था, तब उसमें शक्ति आती है और शक्ति की उत्तेजना में वह चोरी करता है। रोशन उसे रोकती है। पैर पकड़ लेती है; पर वह कुछ सुनना-समझना नहीं चाहता। वह सोचता कि औरत का क्या भरोसा! वह रोशन के समझाने-बुझाने को भी एक षड्यन्त्र समझता। वह सदा की तरह अपने स्थायी जुए-घर की ओर चला जाता है। उसके वापस आने का समय कभी निश्चित नहीं रहा।

× × ×

उस आधी रात में जब हमीद उस सूने घर से बहुत-सा माल चुरा कर लाया, तब उसने यह अनुभव किया कि उसका मन घर जाने की गवाही उसे नहीं दे रहा है, वह सीधा जुआख़ाने में जा पहुँचा। वह सोच रहा था कि यदि वह जुआ न खेले तो उसका काम ही नहीं चल सकता। और अगर सिर्फ़ जुए को ही वह अपनी जीविका का साधन बनाये रहा तो भी ठीक नहीं है। अधिकाश तो उसे चोरी से ही मिलता है। इसलिए चोरी ही उसकी जीविका का आधार है। तब क्यों न वह जुआ छोड़ कर चोरी ही करे। इससे हारने का ख़तरा तो न रहेगा, लेकिन जान की जोखिम पहले से भी अधिक हो जायगी। तब वह लौट पड़ा। उस दिन उसने पहली बार रोशन को जी भर कर प्यार किया। रोशन को तो नया जीवन मिल गया। उसने पहली बार पत्नीत्व का इतना सुखद आनन्द उपभोग किया, पहली बार वह अपने आपको भूल गई। जीवन में एक बार वह हमीद के बाहुपाश में बँध कर अपने को भूल जाना चाहती थी!

प्रातःकाल हमीद ने रोशन को सारे जेवर सौंप दिये और फौज़ की

भर्ती के दफ़्तर में जाकर रँगरूटों में अपना नाम लिखवा लिया। अपने प्रति इस आकस्मिक परिवर्तन को वह भी न समझ सका। फिर भी कभी-कभी वह रोशन के लिए अपने दिल में बेचैनी का अनुभव अवश्य करता था। पर न जाने क्यों वह रोशन को अपने से अलग रखना चाहता था; उसके स्नेह को अपनी छाया में आने देना नहीं चाहता था। वह अपने को याद रख कर सारे जगत् को भुला देना चाहता था। यही उसको सिखाया भी गया था। उसके जीवन का एक ध्येय रह गया था, बन्दूक की गोली का निशाना और दुश्मन की खोपडी। वह और कुछ भी समझना नहीं चाहता था। वह एक ही काम याद कर अपने कर्त्तव्य से बरी होना जानता था। उसे इसकी चिन्ता न थी कि पीछे क्या है। वह आगे बढना चाहता था। आगे जो भी कुछ हो, उस पर निशाना मारना उसकी नमाज़ और वही उसके लिए पाक क़ुरान द्वारा निर्देशित जन्नत का रास्ता था।

एक दिन वह छठी रेजीमेंट का इक्कीसवाँ सिपाही बनाकर सुदूर प्रदेश के मैदानों मे शत्रु के सैनिकों का मुक़ाबला करने के लिए भेज दिया गया। उत्साह की बेचैनी और विवशता से उसका दिल दबा हुआ था।

× × ×

कितने ख़्याल, कितनी कल्पनाएँ, कितनी आशाएँ और सुखद सपने अपने नन्हें से हृदय मे छिपा कर रोशन वह मीठी रात याद किया करती थी, जब अपनी स्मृति देकर उसका स्वामी सदा के लिए उससे अलग हो गया था। इतने बड़े ससार में न जाने किसके आधार पर उस अकेली को छोड़कर वह चला गया। उसकी क्या भूल हुई? आगे वह कुछ न सोच सकी। स्वामी के प्रति आदर की भावनाएँ ही उसके मन मे थीं।

महीने भर बाद जब उसके द्वार पर डाकिये ने आवाज दी, तब वह अचकचा कर उठ बैठी। उसने शीघ्रता से द्वार खोला। प्रसन्नता, आशा और निराशा के मिश्रित आश्चर्य से उसकी ओर देख कर वह एकदम

बोली—'क्या उनकी कोई चिट्ठी लायें हो ?'

डाकिया अकस्मात् रुलाने वाले समाचार भी लाता है, और कभी हँसा भी देता है। फिर भला वह रोशन के शब्दों को तोल कर उसकी आँखें पढ कर उसके दिल की तस्वीर भी न देख पाता! जवानी से भीगी हुई हलकी-हलकी मूँछें मुस्करा दीं। आँखों में पुरुषत्व की चमक नाच उठी।

क्षणभर का यह मौन रोशन के भावों को स्थिर न रख सका। आँखें कुछ अधिक खुल गई और चेहरे का लाल रङ्ग हलका पड़ गया, ओंठ धीरे से काँपे और युवक पोस्टमैन ने सुना—'क्या उनकी कोई चिट्ठी नहीं है तुम्हारे पास ?'

'उन्हीं की ख़बर है। तुम्हारे शौहर का नाम हमीद ही तो है ?'—गिने हुए शब्द कह कर उसने थैले में हाथ डाल दिया और एक पग आगे रख कर आश्चर्य और प्रसन्नता से विह्वल रोशन के पाँव से सटाते हुए बोला—'तुम्हें उन्होंने रुपये भेजे हैं, अन्दर चलो न!'

पोस्टमैन की नशीली आँखों के जादू में डूब कर वह अन्दर की ओर बढी। वह बोला—'दरवाजा बन्द कर दो, रुपये पैसे की बात है, तुम अकेली हो, कोई सुन ले तो मालूम है क्या हो जाय ?'

'क्या हो ?'—आश्चर्य से उसकी ओर देख कर उसने पूछा।

कुछ भी उत्तर न देकर वह खिलखिला कर हँस पड़ा। वह अधीरता से बोली—'तुम दिल्लगी करते हो डाक-बाबू! बताओ न, क्या हो जाय ?'

'दिल्लगी नहीं करता। पर अकेले रहने पर तुम्हें लोग कली से फूल बना देंगे और फूल तोड़कर फिर सूखने को फेंक देंगे!'—पोस्टमैन मुस्करा के बोला।

'तुम तो ऐसी ही बातें करते हो! अच्छा बताओ न, उन्होंने क्या लिखा है, कहाँ रुपये-भेजे हैं? दिखाओ तो, मैं उनका लिखा पहचानती

हूँ। मुझे दे न दो मेरी चिट्ठी।'—रोशन ने धीरे-धीरे कहा। उसकी बेचैनी उसके उच्चारण में काँप रही थी।

डाकिया बोला—'मैं इतनी दूर से तुम्हारे लिए रुपया लाया हूँ, उनका सन्देश लाया हूँ और तुम मुझे बैठने को भी नहीं पूछती, मुझे एक गिलास पानी भी नहीं पिलाती!'

परेशानी और लज्जा के भाव उसके मस्तक पर लाल होकर रह गये। उसने सहन में पड़ा पलँग बिछा दिया। वह बैठ गया लेकिन रोशन खड़ी ही रही। तब उसने कहा—'और पानी न पिलाओगी?'

उसने अपने दुपट्टे का छोर अनामिका मे लपेटते हुए, नतमस्तक हो कहा—'तुम तो हिन्दू हो, पानी पी लोगे मेरे हाथ का?'

दिल के अरमान पाशविकता का सहारा लेकर अभी तक जो झङ्कार कर रहे थे, वह रोशन की बात से कुछ क्षणों के लिए डगमगा गये। वह बोला—'प्यासे को तो पानी पिलाना ही चाहिए। उस समय यह न सोचना चाहिए कि कौन क्या है! दिलों को पानी मिला भी देता है, अलग भी कर देता है, और मुझे तो अभी दिल मिलाना ही है!'

उसकी बात सुन कर रोशन लाज से सिमट गई, धीरे-धीरे चल कर आँगन के छोर पर रखे घड़े में से पानी उँडेल कर लोटा भर लाई। लोटा उसे देकर वह बोली—'मेरे दिल में जाने कैसा हो रहा है, तुम जल्दी ही उनकी ख़बर सुना दो मुझे। सच, अब बहुत तङ्ग न करो।'

'अच्छा, उनकी ख़बर सुना दूँ तो क्या दोगी, पहले यह बताओ।' लोटा नीचे रखते हुए वह बोला।

नारी का अभिशाप, उसकी दुर्बलताओं के बवण्डर में पड कर चीत्कार कर उठा, वह मौन खड़ी रही। वह उठा, और रोशन के पास जा पहुँचा। यह कैसा व्यापार है कि अनचाहे, अचानक और अनजाने ही बलिदान होने की घड़ी नारी के सामने आ खड़ी हुई।

पति अपनी चीज़ ले गया, फिर यदि उसका उपयोग होवे तो नारीत्व

नष्ट होने का प्रश्न नहीं है। माना कि पत्नी पति के लिए है, पर उसका एकाधिकार तो उस पर नहीं है। नारी भी पुरुष के साथ चल सकती है—मानवता आज प्रगति के पथ पर खड़ी होकर इन्क़लाब की आवाज़ देकर नारी को सावधान कर रही है। यदि पति को अपना आदर्श न सूझे तो नारी क्या करे? उसे अपना आदर्श भी भुला देना चाहिए—यह नवीन नारीत्व रोशन के प्राणों में जाग उठा, साथ ही वह सोच उठी कि यह पाप नहीं है। पति की साधना में लीन रहने वाली नारी, अपना स्त्रीत्व पति को सौंपने के बाद, किसी को देती है तब पाप कहाँ रह जाता है! और तब, जब कि पति उसे प्राप्त करके ठुकरा चुका हो।

फिर भी, कुछ पीछे हट कर वह बोली—'पहले उनकी ख़बर सुना दो न!'

कठोरता पर प्रेम की पॉलिश करके पुरुष नारी को भुलावे में डाल देता है, चाहे वह पति ही क्यों न हो—नारी बेचारी क्या समझे! वह पोस्टमैन युवक बोला—'नहीं, पहले न बताऊँगा।'

'अच्छा, पहले दूर से ही दिखा दो।'

'यह न होगा। पीछे दिखा दूँगा।'

'अच्छा, पीछे ही सही, पर दिखा ज़रूर देना।'

'यह माना।'

और नारी का आत्म-समर्पण, प्रगति के पथ पर लाचार-युग के अभिशाप ने करा दिया।

२

लड़ाई के मैदान में, तोपों की गडगड़ाहट के बीच, जो अपने जीवन के स्वप्न साकार करने की निर्मूल कल्पना लेकर, अपनी परिस्थितियों से विवश होकर जाते हैं, उनके दिलों की दुनिया में जो आशा का सन्देश सदा जागता रहता है, वह क्या कभी पूरा होगा? यह चिन्ता, यह विवशता मन-प्राण पर जो आघात करती है क्या वह देश से दूर बैठे उन

नौजवानों को मृत्यु से अधिक यन्त्रणा नहीं देती जो जीवन को हथेली पर रखकर किसी प्रेरणावश वहाँ जाते हैं।

और जिस हमीद को रोशन से बिछुड़े हुए एक वर्ष से भी अधिक हो गया है, वह हमीद रेड-क्रास सोसाइटी के कैम्प-अस्पताल में पड़ा जब कराह रहा था, तब उसे रोशन की याद आई, उस रोशन की जो उसके साथ जीवन भर के लिए बँध कर आई थी, जिसे कभी न छोड़ने का वादा उसने किया था, जिसकी आँखों में अपनी आँखे डाल कर उसने मदहोश बना दिया था, जिसके प्राणों में अपने प्राणों की गति भर कर बेहाल कर दिया था। आज वह रोशन की याद में तड़प रहा है, उसके अस्थिर प्राण आज उसके अभाव में चीत्कार कर उठे हैं। आज वह अपनी उच्छृङ्खलता और जीवन को उछालते हुए चलने के सङ्कल्प पर बेचैन होकर रोना चाहता है, आज वह अपने आँसुओं से अपने दिल की कालिख धोने के लिए कराह रहा है, उसका रोना क्या जाने उसके पश्चात्ताप को शान्त कर सकेगा या नहीं? पर वह जी भर कर रोना चाहता है। रो भी रहा है।

वह आज अपना भी एक कर्त्तव्य समझ रहा है। उसके मन में इस बात ने घर कर लिया है कि वह जैसे अपनी व्यक्तिगत आज़ादी के ही लिए लड़ता रहा है, उसने कभी अपनी राह में प्रेम को नहीं आने दिया। वह अपने जीवन में कभी यह कल्पना भी नहीं करता था कि एक दिन वह अपना सारा सुख और स्नेह छोड़ कर लड़ाई के मैदान में चला जायेगा। और आज उसके लिए वही अप्रत्याशित भावुकता सत्य हो गई है।

रोशन के लिए वह अपना आधा वेतन भेज देता है, क्योंकि उसकी देखभाल करना उसका पहला कर्त्तव्य है। जीवन में सुख नाम के जिस साधन को प्राप्त करने के लिए उसने पाप किया था, आज उसके आँसुओं ने वह पाप सदा के लिए धो दिया है।

रोशन

उसे रह-रहकर वे दिन याद आने लगे जब वह रोती हुई रोशन को ठुकरा कर जुआख़ाने में रातें बिताता था, जब वह शराब के नशे मे मस्त होकर, भविष्य को चुनौती देता हुआ, अपनी युवती पत्नी को गाली देता और मारता था। जब वह सुनसान मकानों के वैभव को लाँघ कर युगों से इकट्ठी की हुई सम्पत्ति को हथियाने के लिए चोरी करता था और भी न जाने कितने पाप उसने किये होंगे, जिनका कोई हिसाब नहीं—उसने कभी एक क्षण को भी पाप से मुख नहीं मोडा था। वह सदा पाप मे ही खो कर अपने अन्तर को विश्व के नियन्त्रण से दूर रखना चाहता था—उसके लिए विधि के विधान में कहीं भी पुण्य नाम का शब्द नहीं था। नारी की पवित्रता उसके सामने अँधेरे से भी अधिक काली थी। पति बन कर भी वह अपना उत्तरदायित्व समझना नहीं चाहता था, या उसे समझने की क्षमता नहीं रखता था। अन्तस्तल की प्रेरणा नारी को गुलामी की जिन जञ्जीरों में जकड़े हुए है, वह उन्हें और भी अधिक मज़बूती से बाँधने में ही अपना पुरुषत्व समझता था।

लेकिन आज उसके घायल शरीर के भीतर छिपा हुआ दिल जैसे सोते से जाग उठा हो। आज उसके सामने नारी कुरान की आयतों और नमाज़ की अज़ान से भी पाक और साफ नज़र आती है। आज वह नारी की क़ुर्बानी की महत्ता को समझने की शक्ति पा गया है। आज वह नारी के दिल में बसे हुए उन आँसुओं की यथार्थता समझने में समर्थ हो गया है, जो पुरुष की कठोरता से पसीज कर आँखों की राह ससार की निर्ममता पर चीत्कार करते हैं। आज उसे रोशन की वे आँखें जो उसकी निष्ठुरता के कारण रोते-रोते लाल हो गई थीं, अपने चारों ओर रोती बिलखती दीखती हैं—आज नारी की विवशता जैसे उस कठोर पुरुष के मन में समा कर अपनी व्यथा घोल देना चाहती है।

तब नर्स ने आकर उसके आँसू पोंछ दिये, सान्त्वना के कुछ गिने-चुने शब्द कहे और दवा पिला दी—पुरुष के सामने नारी आ खड़ी हुई,

तब वह नारी के प्रति अपना प्यार व्यक्त करने के लिए, अपनी श्रद्धा और सहानुभूति अर्पण करने के लिए, ज्योंही पाँवों की ओर झुका कि खाट से गिर पड़ा। नारी का मन चीख़ पड़ा। पुरुष के घाव हरे हो गये। शरीर और दिल पुनः रिस उठा और वह अपने मनोभाव व्यक्त करने से पूर्व ही असहाय होकर, अपनी अतृप्त आकाङ्क्षाओं के साथ, भटकता हुआ शून्य की स्थिरता में सदा के लिए खो गया। नारी ने अपनी वेदना तब भी व्यक्त की—वह रो पड़ी।

३

'रोशन! भला तू इतने पागलपन से कब तक अपनी ज़िन्दगी सही तौर पर काट सकेगी? तू यह नहीं जानती कि अब मरने के बाद हमीद भला क्या आयेगा? तू भी औरत का दिल रखती है। ममता भरा कोमल दिल, जिसमें कठोरता नाम को भी नहीं है। तेरे दिल में भी अरमान हैं। उन अरमानों को यों ही सिसकने देना अपने दिल के साथ भारी ग़द्दारी करना होगा। रोशन, मैं भी इन्सान हूँ, एक औरत के दिल के पास अपना दिल जिस आज़ादी और ज़िन्दादिली से मैंने छोड़ दिया था वह भला कब तक क़ाबू में रहे? तू एक बार बस 'हाँ' कह दे और फिर ज़िन्दगी का जो रास्ता हमारे लिए तेरा अल्ला-ताला मञ्ज़ूर करे, वह मुझे भी मञ्ज़ूर होगा। मैं आदमी हूँ, मेरे दिल में भी तेरी जैसी औरत के लिए इज़्ज़त और मुहब्बत है। मुझे तेरा यह रोना अब नहीं भाता। अगर तू आँखों से रोना जानती है, तो मैं दिल से रोना जानता हूँ रोशन! तू मेरे साथ भाग चल ..।' पोस्टमैन ने कहा।

आँसुओं से तर बड़ी बड़ी आँखे, एक बारगी, उसकी ओर उठाकर रोशन ने कहा—'यह नहीं हो सकता कुन्दन! मुझे इसी ज़िन्दगी से राहत मिलेगी। मुझे उनके मरने का कभी ग़म नहीं है, लेकिन तुम जानते हो, ख़ुदा के सामने मुझे इसका जवाब देना होगा, जहाँ वे भी मौजूद होंगे।'

'लेकिन रोशन !'—बात काटकर कुन्दन ने कहा—'तू अपनी इस जवानी को, अपनी जवानी के अरमानों को और मेरे लिए अपने दिल में बसी हुई मुहब्बत को यों ही रहने देगी, तुझे इस ग़म में मरना भायेगा ? घुट-घुट कर मरेगी और मुझे भी मारेगी, यही तेरी इन्सानियत है ? तू अपने दिल के जज़्बातों को अपने ही दिल के मरघट पर इस बेदर्दी से जलाये दे रही है। तुझे अपने पर भी रहम नहीं आता ? तूने कभी यह भी नहीं सोचा कि मैं तुझे जिस दिल से चाहता रहा हूँ, वह दिल अब मेरे क़ाबू में नहीं है। मुझे तेरा ग़म नहीं भायेगा; यह मैं जानता हूँ। मुझे खोकर ख़ुद भी खो जायगी यह भी मैं जानता हूँ—लेकिन तुझे खो कर मैं जिन्दा न रहूँगा। तू 'हाँ' कह दे, तो मुझे जन्नत मिल जाये और अगर तू 'ना' कहती है तो तुझे मालूम है कि मैं खो जाऊँगा, ज़िन्दा न रहूँगा। जानबूझ कर मर जाऊँगा, ख़ुदकुशी कर लूँगा।'

रोशन, तुमने सुना मैं, ख़ुदकुशी कर लूँगा। हमेशा के लिए तुम्हारे समाने से हट जाऊँगा। जी चाहते भी फिर तुम मुझे न देख सकोगी। और तब तुम दुनिया में अकेली रह जाओगी। तुम्हारी बात सुनने को फिर कोई दूसरा कुन्दन तुम्हें न मिलेगा। बरबाद करने वाले बहुत मिलेंगे। तुम जान-बूझकर अपना सहारा खो रही हो। भटकोगी रोशन !'

'कुन्दन, तुम ऐसा न कहो। मेरा दर्द समझो, मेरे आँसू पोंछे नहीं तुमने, मुझे और रुला दिया। पहला वार ख़ुदा ने किया था और दूसरा वार तुम कर रहे हो। तुम जानते हो कि तुम हिन्दू हो। सोचो ज़रा, दुनिया क्या कहेगी !'—रोशन ने कहा।

कुन्दन बोला—'दुनिया सब कुछ जानती है। उसकी बात सोचना मेरा काम है। यह याद रखो कि मेरे सिवा तुम्हारा कोई भी नहीं हैं। तुम्हें मुझ-सा हमदर्द दूसरा न मिलेगा रोशन ! ज़िन्दगी में तुम्हें सुखी देखने की ख़्वाहिश थी, पर वह पूरी न हो सकी।'

दरवाजे की ओर धीरे-धीरे बढ़ते हुए कुन्दन को लपक कर पकड़ते

हुए रोशन ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा—'मुझे तुम्हारा कहा मञ्ज़ूर है कुन्दन! तुम मुझे अकेली न छोड़ो।'

कुन्दन ने कहा कुछ भी नहीं। जैसे उसे यह सब पहले ही से ज्ञात था। उसके गर्म होठ एक बार रोशन के आँसुओं से भीगे हुए कपोलों को छूकर रह गये। जैसे वे जानते हों कि पुरुष के बिना स्त्री असहाया है। उसे पुरुष की आवश्यकता है और ।

× × ×

उस दिन के बाद रोशन और कुन्दन क़ो किसी ने न देख पाया—पता नहीं दोनों कहाँ चले गए।

एक नोट—

ज्ञानचन्द्र ने ज्यों ही नोट मेरी ओर बढाया कि सामने बैठे हुए उस छोटे लड़के ने ज़ोर से छींक दिया। हम जैसे लोगों के लिये पाँच रुपये कम नहीं होते, परन्तु 'सगुन-असगुन' न मानते हुए भी, एक आशका के कारण, उस समय नोट लेने से मना कर दिया।

शाम को साफ कपड़े पहन कर बाज़ार की ओर चला। दो निश्चय थे—एक तो पुराने साथियों से मिला जाये। दूसरा उन महाशय के साथ जाकर कहीं गाना-वाना सुना जाये, जो दो दिन से मेरे पीछे पड़े थे। इसमें कोई शक नहीं कि दोनो ही निश्चय पूरे किये जायेंगे, लेकिन सवाल यह था कि पहले दोस्तों से मिला जाये या तफरी की जाये?

जेब में ज्ञानचन्द्र द्वारा दिया हुआ वही पाँच रुपये का नोट, जिसे देते वक्त सामने बैठे लड़के ने छींक दिया था, और उस समय न लेकर मैंने आते वक्त शाम को लिया था, एक रुपया, कुछ पैसे, सिगरेट की एक डिबिया और दियासलाई का बक्स, कुल-जमा इतनी ही चीज़ें थीं। हाँ, एक रूमाल और था, बस।

रात की गाड़ी से लखनऊ जाना था, इसलिये 'परदेस' में आख़िरी दिन भी रोज़ जैसी मनहूसियत में गुज़ारना मुझे तो क़बूल नहीं था। यह सोच कर चौराहे से लायब्रेरी की ओर न मुड़ कर सीधा ही चला। पहले ज़रा तफ़रीह का ही निश्चय किया।

नियत स्थान पर वे महाशय मिल गये, जिनकी इच्छा थी कि मैं कुछ शौक़ करूँ। बात ठीक है कि उन्हें मुझसे न जाने क्यों कुछ हमदर्दी-सी हो गयी थी, यहाँ तक कि उनका कहना था कि मुझे पैसे नहीं 'खरचने' पड़ेंगे।

वे महाशय गली के मोड़ पर एक कमरे में अकेले रहते थे। कमरा अच्छी तरह सजा हुआ था। दो आलीशान पलङ्ग पड़े हुये थे। एक पर मसहरी तनी हुई थी। उस कमरे के पीछे एक कोठरी भी थी, उसके दरवाज़े पर काले रंग का परदा भी पड़ा हुआ था।

लालटेन जला कर वे बाहर चले गये और कुछ ही मिनटों बाद अपने साथ एक युवती को ले आये। वह मेरे पास ही पलग पर सट कर बैठ गई। इसमें शक नहीं कि वह ख़ूबसूरत थी, साफ कपड़े पहने थी, कपड़ों से खुशबू उड रही थी; लेकिन मैं धोखे में तो नहीं आ सकता था। वह एक वेश्या की लड़की है, यह अनुमान तो ना समझ आदमी भी लगा लेता।

उसके चेहरे पर फीकी सी रौनक़ थी, लेकिन आँखों में व्यथा की हँसी चमक रही थी। उससे मेरा परिचय कराया गया कि मैं उस लड़के का सबसे प्यारा दोस्त हूँ जिसे वह चाहती है। और उस समय जैसे वह ख़ुशी से पागल हो गई। तब मैं उन आँखों में छाई हुई व्यथा की कथा को थोड़ा-थोड़ा पढ़ पाया।

वह नारी है, चाहे पतित ही क्यों न हो। उसने एक नारी का हृदय पाया है, उस हृदय मे पनपने वाले प्रेम और स्त्रीत्व से वह किसी तरह दूर नहीं रह सकती। उस नारी ने बेतों की मार सहन करके भी अपने प्रेम के पौधों को नहीं झुलसने दिया और अपने प्रेमी के दूर देश जाने पर उसकी याद को दिल से भुलाया नहीं। उस याद के बवण्डर में बह जाना ही, न जाने क्यों, उचित समझा।

लेकिन जिस लड़के को मेरा सब से बड़ा दोस्त बताया गया था, वास्तव में, मैं उस लड़के का नाम तक नहीं जानता था। और उस लड़की का दिल न दुखे इसलिये मुझे झूठ भी बोलना पड़ा; मनगढ़न्त बातें भी बनानी पड़ी, जानबूझ कर उसके साथ खिलवाड़ करने के लिए।

साथ वाले महाशय कमरे से लालटेन उठाकर अन्दर ले गये थे।

बत्ती धीमी करके वे वहीं बैठ रहे और कमरे में बहुत हल्का हल्का प्रकाश रह गया।

उस ख़ुशमिजाज लड़की ने मुझे अपना देवर बना लिया था। उफ ! यह लड़की अपने प्रेमी के लिये, उसके सबध में दो बातें जानने के लिये, जाने किसे-किसे अपना देवर बनाने के लिये विवश होती होगी! लेकिन इस नाते को निभाने में क्या कोई सफल भी हो पाता होगा !

× × ×

सात बजे मै वहाँ पहुँचा था और उस समय नौ बज रहे थे। दो घण्टे कम नहीं होते। लायब्रेरी बन्द हो गयी होगी, इसलिये मित्रों से मिलने में दिक्कत होती, क्योंकि उनके घर जाना पड़ता।

एक दोस्त से मिलना बहुत ज़रूरी था। उसके घर नहीं जा सकता था, क्योंकि उसके भाई मुझे 'भला आदमी' नहीं समझते थे। न समझे तो उनका दोप नहीं है, क्योंकि मुझ में भले आदमियों में पाए जाने वाले एक भी लक्षण नहीं हैं।

रहा राधेश्याम और शान्ती से मिलना तो उन लोगों के घर वाले अशिष्ट नहीं हैं। मुझे तो इतना विश्वास था कि यदि वे सो भी गये होते तो जगा दिये जाते।

पाँच वर्ष बाद इटावा आकर अपने साथियों से भी न मिल पाया तो यात्रा बिल्कुल बेकार हो जावेगी, बेकार ही नहीं दुःखमय भी। फिर यों कहने को जीवन ही दुःखमय है, तब एक यात्रा के ही बारे में क्यों सोचा जाये ? यह दलील भी ठीक नहीं जँची। जब एक काम करना ही है और वह आसानी से हो सकता है, तो जानबूझ कर न करना अपनी ग़लती है।

मैं अपने साथियों को यह नहीं बताना चाहता कि इटावा छोड़ने के बाद मैंने क्या किया ? मैं यह भी क्यों चाहूँ कि वे मेरे बारे में सब-कुछ जानें ही। अपने बारे में कुछ भी जानने का हक़ मैं किसी को दे ही नहीं सका हूँ।

सहायता की मुझे ज़रूरत रहती है, यह मैंने माना, लेकिन मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि जो मेरी इज़्ज़त-आबरू या नाम देखकर मेरे साथ सहानुभूति प्रकट करें उनसे दूर रहना ही उचित है। मैं अपने व्यक्तित्व को दूसरों पर लाद कर अपने आपको ऐसा नहीं बनाना चाहता कि लोग मुझे समझें। मैं चाहता हूँ कि मेरी भावनायें इतनी मज़बूत हों कि बिना समझाए लोग मुझे ठीक-ठीक समझ सकें।

और सामने खड़ी वह भोली लड़की जिसे वेश्या कहा जाता है, मुझसे विनीत शब्दों में पूछ रही थी—'आप का पता क्या है?'

तब मैं सोच सका कि मैं इसे पता न बताऊँ क्योंकि कहीं यह घर पहुँच गई, कभी आवेश में आकर पत्र ही डाल दिया तो बड़ी मुसीबत होगी। सिगरेट का कश खींच, धुँआ छोड़ते हुए, मैंने गम्भीर स्वर में कहा—'तुम मेरा पता चाहती हो, लेकिन क्या करोगी? तुम्हारे पास रोज़ सैकड़ों तमाशबीन आते हैं और चाँदी के टुकड़ों से तुम्हारी यह खूबसूरती तौल कर चले जाते हैं! भला, तुम किस-किस के पते इकट्ठे करती फिरोगी? और तवायफों का तो यह काम भी नहीं है!'

कोठरी के दरवाजे पर महाशय जी खड़े हुए जाने कब से ओठों पर उँगली रखकर मुझे बोलने से मना कर रहे थे, लेकिन मैंने उधर देखा ही नहीं!

और वह लड़की गीली आँखों से, आश्चर्य के डोरों में डूबती-उतराती मेरी ओर देख कर कुछ कहने ही वाली थी कि वे पास आकर बोले—'लेकिन इनको पता देने में कुछ हर्ज नहीं है, क्योंकि अब तो इनके और आप के दो नाते हैं ।'

तब वह लड़की आँखें पोंछने लगी। ओह! यह नाते-रिश्ते वाली बात? ठीक है, उसके प्रेमी का दोस्त बन कर आया था और .।

उसने जितनी प्रसन्नता से मेरा पता अपने हाथों में लिया था, उसका बयान नहीं कर सकता।

मैं चलने लगा तो वह जाने कैसी आँखों से मुझे देखने लगी।

वे महाशय मेरे साथ-साथ सड़क तक आये, उनका हाथ धीरे से मेरे कुरते के जेब में गया तो मैंने उनकी ओर देखा। झेंप भरी मुस्कराहट से मेरी ओर देखकर उन्होंने कहा—'कुछ नहीं, जरी सिगरेट ले रहा था।'

'ठीक किया, ले लो।' मैंने कहा। उन्होंने मेरे रुपये बचाये, तो क्या वह सिगरेट के भी हक़दार नहीं हैं? और बेचारे अपनी रोटियों के लिये यदि इतना भी झूठ न बोलें तो क्या करें? वह लड़की तो प्रेम में पागल है, सभी को अपने प्रेमी का दोस्त मान लेती होगी! कौन जाने इस बलिदान का क्या हश्र होगा?

× × ×

पाँच वर्ष के बिछुड़े हुए साथी जब मिले तो प्रसन्नता के आवेग में कुछ कह-सुन भी न पाये।

उस लड़की से मैंने कहा था कि मैं दो एक दिन और ठहरूँगा। कहा तो झूठ था, पर इच्छा होने लगी थी कि एक दिन और ठहरूँ, लेकिन यह शान्ती तो मुझे छोड़ ही नहीं रहा था। मित्रता का तक़ाज़ा भी उसे मुझ से हर बात कहने का अधिकार देता है, दूसरे उसकी बात न मानने की कोई वजह भी न थी।

सोच रहा था लखनऊ जाने की, और स्टेशन पहुँचा अलीगढ जाने के लिये।

और शान्ती की बात टाल भी तो नहीं सकता, वह मेरा प्यारा दोस्त है। हम लोग साथ साथ पढे और खेले कूदे हैं। मैं उसे अपने अन्य दोस्तों से अधिक इसलिये भी मानता हूँ कि वह मेरी ही जाति का भी है। वैसे 'जात-पाँत' तो मैं मानता नहीं लेकिन इस वजह ने कुछ अधिक खींचा है।

लखनऊ का तो पूजा-कन्सेशन था ही, अलीगढ़ जाने के लिये शान्ती

से क्यों ख़र्च कराऊँ, जब कि मेरे पास ज्ञानचन्द्र द्वारा दिया गया नोट है और टिकटघर की खिड़की के पास खड़े होकर नोट निकालने के लिये ज्यों ही जेब में हाथ डाला कि मन में पाँच रुपये की चोरी के लिये आघात पहुँचा। न रूमाल था, न नोट, न सिगरेट का डिब्बा और न दियासलाई, केवल एक रुपया और कुछ पैसे पड़े रह गए थे।

शान्ती कुली से सामान उठवा कर प्लेटफार्म की ओर जा रहा था। और मैं खिड़की से अलग होते हुए उस नोट की बात सोच रहा था।

उस लड़के ने छींका जो था—वह भोली (?) लड़की, उसका दलाल, उसने जेब में हाथ डाला था, सिगरेट के लिये ? ख़ैर ! मेरी ओर से उसका मेहनताना ही सही ! लेकिन ऐसे कब तक चलेगा उसका रोजगार ?

शान्ती से भी झूठ बोला, क्योंकि बोलना पड़ा। उसने फिर ज़िद न की।

जब अलीगढ़ जाने वाली गाड़ी चलने लगी तो मैंने हाथ उठाकर उसे बिदा किया। कुछ देर बाद मेरी गाड़ी भी चल पड़ी।

रबड़ का हाथ—

आधी रात बीतने पर अकस्मात् नीनियाँ चौंककर जाग गई। उसे लगा—जैसे दूर की पहाड़ी पर खड़ी एक काली छाया अपना रबड़ वाला नक़ली हाथ उठा कर ज़ोर से कह रही है—'मेरे पास चली आओ निनी! दूर न भागो, चली आओ।' वह बेहद भयभीत मालूम हो रही थी, उसकी देह काँप रही थी। पास ही तीन पलंग और बिछे थे, जिन पर उसके छोटे भाई-बहन सोए हुए थे। चारों ओर सन्नाटा छाया था।

बाहर वाले कमरे में लॉरेन्स सो रहा था। शायद सोने से पहले वह बल्ब के ऊपर लगे हुए हरे रंग के ग्लोब पर लाइट शेल्टर लगाना भूल गया था, सो सामने वाले लॉन में, कमरे से आने वाली, रोशनी छिटक रही थी और उधर का द्वार थोड़ा खुला था।

भयभीत नीनियाँ उस आवाज़ के बारे में सोचने का प्रयत्न कर रही थी, लेकिन उसका मस्तिष्क उस समय एक विचित्र ढग के संघर्ष में व्यस्त था। वह उठी और धीरे-धीरे पलंग से उतर कर खड़ी हो गई। पहाड़ी के पास जिस छाया के होने का उसे सन्देह हुआ था, वह फिर उसे न दीखी। उसकी देह शिथिल-सी होने लगी। एक बार अँगड़ाई लेकर उसने स्वस्थ होने का प्रयत्न किया और शीघ्रता से लॉरेन्स के कमरे की ओर भागी। अधखुले द्वार से झाँककर उसने देखा कि लॉरेन्स पलँग पर बेख़बर सोया हुआ है। उसके शरीर पर कम्बल पड़ा है, बड़े-बड़े बाल उलझकर बिखर गये हैं और कुछ लटें मस्तक पर झुक रही हैं। कोने में रक्खे स्टूल पर टेबुल लैम्प रक्खा है और उसके हरे प्रकाश में लॉरेन्स का सुगठित चेहरा और भी भला मालूम हो रहा

है। हलकी मुस्कराहट उसके ओठों के जोड़ दब जाने से चेहरे पर फैल रही है।

निनी शीघ्र ही कमरे के अन्दर आ गई। उसे उस आवाज़ की कल्पना एक क्षण को भी नहीं भूलती थी और यही कारण था कि उसका भय तनिक भी कम न हुआ। हरा प्रकाश उसके चेहरे पर पड़ रहा था और आँखों में परेशानी के चिह्न साफ़ दृष्टिगोचर हो रहे थे। वह लॉरेन्स के सिरहाने की ओर, ज़मीन पर ही, घुटनों के बल बैठ गई और दोनों हाथ पलँग पर इस तरह रख लिये कि ज़रा से प्रयत्न में ही वह उसे पकड़ सकती थी। फिर सिर घुमाकर पलग पर रख लिया। मुड़ी हुई गर्दन से लेकर गालों के छोर तक और मुरझाये हुए चेहरे के निचले भाग में, इस समय, एक विचित्र ढंग की लाली फैल गई थी। एक बार उसका सारा शरीर सिहर उठा और उसने नेत्र बन्द कर लिये।

कुछ ही देर बाद उसने आँखें खोल दीं और देखा कि कमरे की नीली दीवारों पर हरी रोशनी पड़ रही है, जिससे एक तीखेपन का उसे अनुभव हुआ। वह उठी और प्लग दबाकर रोशनी बुझा दी। चारों ओर अँधेरा हो गया, तब उसे फिर भय मालूम हुआ, लेकिन यह सोच कर कि वह लॉरेन्स के पास है और ज़रा-सी आहट से वह जाग जायेगा, उसे धीरज हुआ। रह-रहकर उसे अनुभव हो रहा था कि पहाड़ी पर खड़ी हुई छाया की भर्राई हुई-सी, आग्रहपूर्ण, आवाज उसके कानों में गूँज रही है।

सहसा बग़ल वाले फ़्लेट में कुत्ता भौंका, साथ ही निनी भी जोर से चीख़ पढी और स्वतः ही उसके हाथों में लॉरेन्स की देह आगई। ज्यों ही उसके मन में यह विचार आया कि वह आवाज़ कुत्ते की थी, वह बहुत लज्जित हुई, लेकिन तब तक लॉरेन्स जाग गया था और आश्चर्य से निनी की ओर देखकर उठ बैठा था! उसने एकदम पूछा—'अरे, तुम यहाँ कहाँ?'

निनी से कुछ कहते न बना। लॉरेन्स ने उठकर उसको पलग पर बिठाया और आप उसकी बगल में बैठ गया। फिर पूछा—'क्या हुआ निनी, तुम डरी-सी मालूम होती हो?'

निनी ने अपना शरीर तनिक लॉरेन्स की ओर झुकाते हुए कहा—'हाँ, अभी दस मिनट पहले ही मैंने सुना कि मुझे सामने की पहाड़ी पर खड़ी हुई एक छाया ज़ोर-ज़ोर से पुकार रही है कि मैं उसके पास चली जाऊँ।'

लॉरेन्स के चेहरे पर हलकी मुस्कराहट आ गई। रोशनी करके उसने व्यग्य से कहा—'तब फिर यहाँ क्यों आईं? वहीं जातीं।'

'तुम मज़ाक समझते हो और मुझे बड़ा डर लग रहा है।'

'तब ऊपर माँ के पास चली जातीं।'

निनी ने लारेन्स के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—'वे झूठ समझतीं, कहतीं कि मैं पागल हो गई हूँ।'

'और मैंने क्या समझा, यह नहीं सोचा तुमने?'

'तुम सोचो चाहे कुछ, पर मैंने सोचा कि वह छाया अगर मुझे लेने आई तो मैं तुम्हें पकड़ लूँगी। और जो वह आ ही जाती तो क्या तुम बचाते नहीं मुझे?'

लॉरेन्स ने चकित होकर उसकी ओर देखा और कहा—'तो क्या सचमुच निनी, तुम्हें ऐसा लगा कि कोई बुला रहा है?'

'हाँ, बड़ी भद्दी सी आवाज थी, मैंने साफ सुनी है।'

'तुम्हें विश्वास है कि वह आवाज किसी पहाड़ी जानवर की नहीं थी?'

'नहीं, तुम सच मानो। मैंने साफ सुनी है।'

'तुम्हें भ्रम हो गया है।'

निनी ने शान्तभाव से, लॉरेन्स के कन्धे से अपना सिर टिकाते हुए कहा—'मैं सच कहती हूँ। तुम्हें तो तब विश्वास होता जब कोई सचमुच

तुम्हारी निनी को ले जाता !'

'मेरे जीते जी तुम्हें कोई ले जाय, यह कैसे हो सकता है ?'

निनी कुछ न बोली, वैसी ही बैठी रही, तब लॉरेन्स ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—'बहुत डर गई हो शायद ?'

'तुम मेरी जगह होते तो मालूम होता।'

लॉरेन्स कुछ कहने को हुआ कि बग़लवाले कमरे में लगी दीवार-घड़ी ने तीन बजाये। रात वैसी ही निस्तब्ध थी। दूर कहीं से पहरे वालों की सीटी की आवाज़ें सुनाई पड़ रही थीं।

लॉरेन्स बोला—'अब जाकर सो रहो निनी! डरने की कोई बात नहीं है। वहाँ तुम्हारे भाई-बहन भी तो हैं और अब तो सबेरा होने में कुछ बहुत देर नहीं है।'

लॉरेन्स उसे उसके पलग पर लिटा आया तब वापस आकर देखा, आकाश में तारे झिलमिला रहे हैं और दूर तक का पहाड़ी प्रान्त धुँधले प्रकाश में ऊँघ रहा है। द्वार भेड़ते-भेड़ते हलकी, किन्तु सर्द, हवा का एक झोंका अन्दर आ गया। उसने सिटकिनी बन्द करके अपने हाईनैक पुलोवर के कालर को कानों तक चढा लिया और पलग पर जाकर लेट रहा। हरी रोशनी तब भी कमरे के एक कोने में छिटक रही थी।

× × ×

प्रातःकाल रात की सर्द और भारी हवा की नमी कम हो गई थी। रोज़ की ही तरह नौकर ने उसके मुँह में सिगरेट लगा दी और वह ओवरकोट पहन कर घूमने के लिए बाहर निकला। जाते जाते उसने देखा कि बँगले के किनारे वाले सहन में वही नौकर, ठेके पर, काम करने वाली लड़की से हँस-हँसकर बातें कर रहा है। लॉरेन्स शान्तभाव से घाटी के उस पारवाले मैदान की ओर जाने लगा, जहाँ से चीड़ और सागौन का जगल शुरू होता है।

एक झरने के पास वह बैठ गया और यकलिप्टस के ऊँचे पेड़ों की चोटियों पर पड़ने वाली सूर्य की सुनहरी रोशनी की ओर देखने लगा। इन पेड़ों के उस ओर वह पहाड़ी है, जिसका निर्देश करके, पिछली रात, निनी ने कहा था कि वहीं वह काली छाया उसने देखी थी, जिसने अपना रबड़वाला नकली हाथ उठाकर उसे बुलाया था।

लॉरेन्स ने उधर देखा और उसके मन में एक अजीब तरह का कम्पन हुआ। उसे लगा जैसे पहाड़ी से एक काली छाया उतर कर पास वाले बड़े पत्थर पर आ बैठी और धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाने लगी। लॉरेन्स ने आँखें मलकर जब ध्यान से उधर देखा, तब कुछ भी न था। अपने मन की इस कमजोरी पर उसे हँसी आगई। वह उठा और झरने के किनारे वाली पथरीली राह पर चलने लगा। पास की एक काँटेदार झाड़ी पर उसने जोर से छड़ी मारी, जिससे उसमें लगे हुए कँटीले फलों में से कई टूटकर इधर-उधर बिखर गये। वे फल देखने में भले लगते थे। गहरे पीले रग पर क्रिमसन रग की धारियाँ और हलके-हलके नीले रग के गोल निशान, जिनके बीच में बाल से बारीक काँटे उगे हुए थे। लॉरेन्स ने एक फल उठा लिया, लेकिन हाथ मे आते ही उसके बेहद बारीक काँटे उँगलियों और हथेली में चुभ गये और उन काँटों की महीन और तेज नोकें खाल मे टूट गईं। शीघ्र ही लॉरेन्स ने वह फल फेक दिया, फिर हथेली और उँगलियों पर उभरे हुए काँटे निकाल दिये, लेकिन कुछ काँटे मास में इतने गहरे चुभ गये थे कि नाख़ून से उनका निकाला जाना सम्भव न था। उसे हलका दर्द मालूम हो रहा था, लेकिन यह सोच कर उसे सन्तोष हुआ कि बँगले पर निनी, पिन से, वे काँटे निकाल देगी। उसने शीघ्र ही जेब से रूमाल निकाला और उसे कई तहों में मोड़-कर सावधानी से वह फल रखकर जेब में रख लिया। उसने सोचा, जीवन में इतना सुन्दर फल उसने कभी नहीं देखा है, निनी ने भी न देखा होगा, सो वह भी देख लेगी।

सिन्दूर की लाज

आसमान साफ हो गया था और सूर्य की किरणें पहाड़ की चोटियों से उतर कर मैदान में आगई थीं। लॉरेन्स ने आगे जाना उचित न समझा और बॅगले की ओर जाने वाली राह पर वापस लौट पडा।

उसकी हथेली और उँगलियों मे दर्द-सा हो रहा था। उसने हाथ देखा तो मालूम हुआ कि जहाँ-जहाँ काँटे चुभे थे, वहाँ-वहाँ हलका पीलापन आगया है। फिर वह बिना किसी ओर ध्यान दिये, शान्तचित्त, लम्वे-लम्बे डग रखता हुआ बॅगले की ओर चला।

बॅगले पर पहुँचकर उसने देखा कि निनी चाय के लिए उसकी प्रतीक्षा कर रही है और उसके माता-पिता चाय पी, कार पर सवार हो-कर, पहाडी प्रान्त की तलहटी के किसी गाँव में, अपने एक परिचित डाक्टर के यहाँ, चले गये है, जहाँ से उनका वापस लौटना दोपहर से पहले असम्भव है।

निनी को देखते ही लॉरेन्स बोला—'आज तुम्हारा चेहरा पीला-सा मालूम हो रहा है!'

'रात मे मुझे कितना डर मालूम हुआ था, ओह!'

'ऐसी बात है, तो चलो घर वापस लौट चलें।

'लेकिन पिता जी अभी एक मास तक यहीं रहेंगे। ऐसे में वापस कैसे चला जाय?'

'उनसे कहोगी तो शायद वे तुम लोगों को भेज दें। वे चाहें तो माँ के साथ यहाँ रह सकते हैं, देख-भाल के लिए नौकर-चाकर हैं ही।'

'मैं उनसे आज ही कहूँगी।'

लॉरेन्स ने चाय का प्याला उठाने के लिए हाथ बढाया, तभी उसे दर्द की अनुभूति हुई और उसने कहा—'निनी, ज़रा एक पिन ले आओ। मेरे हाथ में एक ख़ूबसूरत फल के महीन-महीन काँटे चुभ गये हैं। नाख़ून से नहीं निकल पाते।'

निनी सामने की कुर्सी से उठकर लॉरेन्स के पास आई और उसकी

हथेली देखकर कहा—'अरे, यहाँ तो कई निशान हैं, क्या बहुत ज़ोर का दर्द हो रहा है ?'

'जोर का तो नहीं, हलकी-हलकी चिलक-सी होती है।'

निनी ने मेज के ड्राअर से पिन निकाल कर कहा— 'अच्छा, पहले चाय पी लो, तब मैं काँटे निकाल दूँगी।'

दूसरे हाथ से लॉरेन्स ने काँटा उठाया और आमलेट का एक टुकड़ा मुँह मे रखकर कहा—'फल तो इतना ख़ूबसूरत है, पर उसमे काँटे इतने बारीक हैं कि छूते ही माँस के अन्दर पहुँच जाते हैं।'

फिर उसने रूमाल निकाल कर मेज पर रख दिया। सफ़ेद रेशमी रूमाल के बीच में रक्खा हुआ, वह लाल धारियोंवाला, गहरे पीले रग का फल बड़ा सुन्दर लग रहा था। निनी ने, लॉरेन्स के कुछ कहने से पहले ही, उस फल को बायें हाथ से उठा लिया, क्योंकि दाहने हाथ मे चाय का प्याला था, जिसे उत्सुकतावश वह वैसे ही लिये रही। लेकिन फल उठाते ही कुछ काँटे उसकी उँगलियों मे चुभ गये और एक आह भरकर वह फल उसने वहीं छोड़ दिया।

शीघ्र ही लॉरेन्स बोला—'तुमने उसे उठाया क्यों ?'

निनी अपनी कुर्सी से उठ आई और लॉरेन्स की बगल में पड़ी हुई कुर्सी पर आकर बैठ गई। लॉरेन्स और निनी, दोनों ही कुछ देर तक, एक दूसरे के हाथों में लगे हुए काँटों को निकालने का प्रयत्न करते रहे, पर असफल रहे, बल्कि दोनों के हाथों की थोडी-थोडी खाल पिन लगने से उधड़ गई।

जब निनी का बूढा नौकर फ्रेडरिक चाय के बर्तन लेने आया तब निनी ने उससे कहा—'देखो तो फ्रेडरिक, हम लोगों के हाथों में इस पीले फल के काँटे चुभ गये हैं। काँटे बहुत महीन हैं, बड़ी देर से हम दोनों कोशिश कर रहे हैं, पर निकलते नहीं। दर्द भी हो रहा है।'

फ्रेडरिक ने उदासीन भाव से कहा—'मेरी आँखें तो इतनी कम-

ज़ोर है कि तुम्हारे हाथ की रेखायें भी नहीं दीख सकेगी, तुम कहो तो सामने के मकान से हार्डी को बुला दूँ।'

लॉरेन्स ने उत्तेजित होकर कहा—'हार्डी को? डाक्टर न्यूटन का बैरा हार्डी? कभी नहीं फ्रेडरिक, उसे मत बुलाना।'

फ्रेडरिक ने कहा—'क्यों?'

शान्त होकर लॉरेन्स ने कहा—'हार्डी बडा बातूनी है। यहाँ आयेगा तो घटों हम लोगों को तग करेगा। तुम ठहरो, पिता जी आ जायँ, तब ड्राईवर से कहकर काँटे निकलवा लेंगे। तब तक क्या हुआ जाता है।'

निनी बोली—'पर मेरी उँगलियों में बड़ी जलन हो रही है, लॉरेन्स।' फिर फ्रेडरिक से कहा—'तुम हार्डी को बुला दो!'

फ्रेडरिक अभिवादन करके चला गया, तब निनी टिंक्चर आयोडिन की शीशी उठा लाई और पहले लॉरेन्स की हथेली में, फिर अपनी हथेली में ब्रश से ख़ूब लगाया। उधड़ी हुई खाल के अन्दर, जहाँ काँटें चुभे हुए थे, शीतल झनझनाहट हुई और एक बार ज़ोर का दर्द उठा।

हार्डी आया तब उसने फल देखते ही चिन्तित और भयभीत मुद्रा बना, अपने पिचके हुए गालों को फुलाकर विचित्र ढंग से कहा—'यह फल, इसी के काँटे आपके हाथ में चुभ गये हैं? पर वे अब निकलेंगे नहीं। जितना ज़हरीला यह फल है, उतने ही इसके काँटे। डाक्टर को दिखाइए जाकर, जो हाथ काट सके। आप लोग चौंकें नहीं, मैं सच ही कह रहा हूँ। बहुत-सी घटनायें इस फल के कारण हुई हैं। ग़रीबों का तो, इस फल के काँटे लगने के बाद, जीना मुहाल हो जाता है, लेकिन अमीर सब कुछ कर लेते हैं। चार-पाँच सौ रुपये का ख़र्च है—हाथ कटवा दिया, रबड़ का हाथ लगवा लिया; क़िस्सा ख़त्म। कोई तीन-चार साल हुए, मैं डाक्टर साहब के साथ ही यहाँ आया था। डाक्टर साहब तो, जैसे आजकल थीसिस के सिलसिले में पहाड़ के ऊपरी भाग में चले गये

हैं, पहले भी चले गये थे। बस, मैं ही अकेला रह गया था। पीछे वाले बँगले में एक आर्टिस्ट ठहरे थे। उनको इसी फल की वजह से हाथ कटवाना पड़ा था। वे पारसाल फिर आये थे, तब मैंने उनका नक़ली हाथ देखा था। यहाँ तो उन्हें कोई डाक्टर मिला नहीं था, लन्दन गये थे बेचारे।'

लॉरेन्स और किसी विषय पर हार्डी की इतनी वक्तृता सुनने का साहस नहीं कर सकता था, लेकिन इस क़िस्से को सुनना उसने अनुचित न समझा और सब बातें निनी की ही तरह, ध्यान से सुनीं।

हार्डी जाने के लिए तैयार होकर बोला—'आप लोग इन काँटो को पिन-विन से निकालने के चक्कर में न पड़ें। अच्छा हो, ऑपरेशन करा ले।'

हार्डी के जाने के बाद निनी ने लॉरेन्स से कहा—'जिस चित्रकार की बात हार्डी कह रहा था उसे मैं जानती हूँ। अब उससे चित्र नहीं बनते। सीधा हाथ तो कट ही गया है।'

'तुम उसे जानती हो?'

'हाँ, पहले पिता जी उसी से मेरी शादी करने वाले थे—मेरी भी इच्छा थी, लेकिन जब उसका एक हाथ बेकार हो गया तब मैंने इनकार कर दिया। मुझे तो समाज में मान प्राप्त करना है, जो एक अपाहिज व्यक्ति की पत्नी होने पर नहीं मिल सकता।'

'लेकिन अब अगर ये काँटे न निकले तो हमें-तुम्हें भी वैसा ही करना होगा।'

निनी चौंक पड़ी। तब शीघ्रता से दूसरे कमरे में जाकर उसने पिता को फोन किया और सारा हाल बता दिया।

आधे घंटे के बाद ही उसके माता-पिता डाक्टर के यहाँ से वापस आगये और घबराये से कमरे के अन्दर उपस्थित हुए। फिर निनी और लॉरेन्स की हथेलियाँ देखीं और निनी से हार्डी की बातें भी सुनीं।

पिता ने कहा—'तुम लोग डाक्टर के यहाँ चलो।'

लॉरेन्स ने कहा—'लेकिन यहाँ, गाँव के डाक्टर इसका इलाज कर सकेंगे ?'

पिता ने कहा—'अरे, वह बहुत बड़ा डाक्टर है। उसके पास सब साधन हैं। तुम लोग शीघ्र ही चलो।'

तब सब लोग मोटर में बैठकर डाक्टर के यहाँ गये।

× × × ×

काँटोंवाला फल देखकर डाक्टर लूमनग्रेड ने निनी और लॉरेन्स की हथेलियों और उँगलियों की परीक्षा की और एक निःश्वास लेकर शान्त-भाव से कहा—'काँटे इतने अधिक बारीक और तेज हैं कि अब तक नसों के जोड़ पर पहुँच गये हैं और बिना ऑपरेशन किये उनका निकाला जाना सम्भव नहीं है।'

कुछ ठहरकर उन्होंने फिर कहा—'दूसरी ग़लती आप लोगों ने, काँटे पिन से निकालने की कोशिश करके की। ख़ैर, टिंकचर आयोडीन लगा दिया, यह ग़नीमत हुई, वर्ना आप जानते हैं, ज़हर किस तेज़ी से आगे बढ़ता ? मैं कुछ कह नहीं सकता।'

लॉरेन्स और निनी की ओर दृष्टिपात करते हुए डाक्टर बोला—'यह अच्छा हुआ कि आप लोगों की शादी नहीं हुई।'

निनी की माँ ने पूछा—'क्यों, इसके क्या मानी ?'

एक्सरे की छोटी मशीन के ऊपर लगा हुआ काला कपड़ा हटाते हुए डाक्टर बोला—'घबराइए नहीं, मैंने यों ही कह दिया। हाँ, मैं इन लोगों के हाथों का एक्सरे लूँगा।'

निनी के पिता बोले—'हाँ, हाँ, आप अपनी ओर से पूरा प्रयत्न कीजिए। ख़र्च करने के लिए कहें तो चेक पर दस्तख़त करके दे दूँ। मतलब यह कि ख़र्च की चिन्ता न करें।'

डाक्टर ने चश्मा माथे पर चढ़ाकर कहा—'ठीक है। अच्छा, मिस्टर लॉरेन्स और मिस निनी ही अब इस कमरे में रहें।'

डाक्टर की बात सुनकर निनी के माता-पिता और उसका छोटा भाई कमरे से बाहर हो गये। डाक्टर ने अपने सहायक को कुछ बातें समझाईं और शीघ्र ही दोनों की पूरी बाँहों का एक्सरे फोटोग्राफ लिया गया।

पच्चीस मिनट से पहले ही फिल्म डेवलप हो गई और निनी के माता-पिता को सूचित किया गया कि ख़ून हलका होने के कारण निनी की हथेली और ऊँगलियों में चुभे हुए काँटे मणिबन्ध तक पहुँच गये हैं, इसलिए कलाई से उसका हाथ काट देना पडेगा और गाढ़ा ख़ून होने के कारण लॉरेन्स की उँगलियों और हथेली का गोश्त हड्डी तक छीलना होगा, जिसके ऊपर रबड़ लगवाने के लिए उसे भी निनी के साथ ही लन्दन जाना पड़ेगा। ख़र्च का हिसाब साठ पौंड के क़रीब होगा।

लॉरेन्स तो तुरन्त राजी हो गया, क्योंकि डाक्टर के कथनानुसार उसे यह स्वीकार न था कि चौबीस घंटे के बाद पूरी हथेली कटवाए। लेकिन निनी यह नहीं चाहती थी कि हाथ कटवाये; और वह रोने लगी। फिर जब माता-पिता ने कोई दूसरी तरकीब डाक्टर से पूछी और उसने साफ इनकार कर दिया, तब जैसे-तैसे वह भी राज़ी हो गई।

× × ×

निनी लन्दन में, अपने मकान के एक सजे कमरे में, मेज के सामने बैठी है। कुछ दूर पड़ी एक कुर्सी पर लॉरेन्स, हाथ में अख़बार लिए हुए बैठा, उसी की ओर देख रहा है। निनी ने अपना रबड़ वाला हाथ गाउन की जेब में छिपाते हुए लॉरेन्स से पूछा—'तुम्हें मेरे हाथ के कटने का अफ़सोस तो हुआ ही होगा?'

लॉरेन्स अपनी जगह से उठकर आया और निनी के सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गया, फिर शान्तभाव से कहा—'दुख तो हुआ ही निनी, लेकिन इस दुःख के साथ मुझे थोड़ा दुख इस बात का भी है कि ।'

बात काटकर निनी बोली—'कि तुम्हारा हाथ भी कट गया!'

लॉरेन्स ने लापरवाही से अपने दोनों हाथ सामने करते हुए कहा—

'कहाँ ? मेरे हाथ तो ठीक हैं । हाँ, ज़रा खाल छिल गई, सो क्या हुआ ! मुझे अफसोस इस बात का है कि मैं अब तुमसे ब्याह न कर सकूँगा निनी !'

निनी को लगा, जैसे उसके सामने की मेज़ पर बम गिरकर फट गया है, उसके स्नायु अशान्ति का अनुभव करने लगे, उसने आश्चर्य से आँखें फाड़, उसकी ओर देखकर पूछा—'क्यों ?'

लॉरेन्स कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और मेज़ पर एक लिफाफा फेंक-कर जाते हुए बोला—'दस मिनट बाद लिफाफा खोलकर अपने प्रश्न का उत्तर पा लेना ।'

लॉरेन्स चला गया । निनी ने कई बार उसे पुकारा, पर कोई उत्तर न मिला । फिर मेज़ से लिफाफा उठाकर खोला और पत्र निकालकर पढ़ने लगी । लॉरेन्स ने एक स्थान पर लिखा था—

'तुम्हारा पहला परिचित नेवाइल हडसन मेरा मित्र है । वह पाँच साल हुए मुझसे बिछुड़ गया था । कल तुम्हारी पुरानी डायरी में उसका पता देखकर उससे मिला, तब तुम्हारे प्रति उसका प्रेम देखकर मैं रो पड़ा । आज मैं तुम दोनों को इस आशा से छोड़कर जा रहा हूँ कि तुम उससे ब्याह कर लोगी, वह तुम्हें पाने के लिए बेचैन है । और अब तुम्हें भी एतराज न होगा, क्योंकि रबड़ का हाथ उसी अकेले का नहीं है......।'

निनी ने पत्र रखते हुए फोन किया । जब उधर से कुछ जवाब आया, तब बोली—'मैं हूँ तुम्हारी निनी ! तुम अभी कहीं बाहर मत जाना हडसन ! मैं तुमसे मिलने आ रही हूँ ।'

रिसीवर रखकर वह दरवाज़े से बाहर हो गई ।

विरक्ति—

जिस आदमी ने कमरे में प्रवेश किया था, देखने में उसका शरीर मजबूत मालूम होता था। पसीने के कारण उसका चेहरा चमक रहा था। कीमती कपडे का पैण्ट और हरी धारी की सफ़ेद कमीज वह पहने हुए था। दोनों ही कपड़े पुराने, पर साफ थे। पैरों में काले रँग का जूता था, जो पीछे की ओर फटा था। दरवाजा पार करके वह चुपचाप खडा हो गया। उसके दोनो हाथों की उँगलियाँ चचल हो रहीं थीं, जैसे वह अच्छा टाइपिस्ट या हारमोनियम बजाने का अभ्यस्त हो।

कमरे के बीच में रखी हुई बड़ी मेज पर बिजली का पखा तथा टेलीफोन रखा था और चारों ओर फाइलों का ढेर लगा हुआ था।

चश्मे के भीतर से युवक-वकील ने आगन्तुक की ओर देखा। कागज़ की ओर देखने से पहले उसने एक बार फिर ऊपर नजर उठायी और पूछा—'क्या तुम्हारा ही नाम विलास है?'

दो कदम आगे बढ़कर आगन्तुक ने कहा—'जी।'

वकील ने, वैसे ही, नीचे देखते हुए उत्सुकता से कहा—'मेरा नाम जानते हो विलास?'

विलास ने मेज़ के सामने आकर आश्चर्य से उसका प्रश्न सुना और धीरे से कहा—'जानता हूँ।'

क़लम रखकर वकील ने शीघ्रता से पूछा—जानते हो? कहाँ सुना? क्या बाहर 'नेमप्लेट' देखकर जाना या किसी से सुना है? सच कहो।'

विलास वकील के मनोभावों से परिचित हुआ और उसने अपने सामने बैठे हुए व्यक्ति को बेवकूफ तथा चापलूसी-पसन्द समझा। वकील

ने कहा—'अरे ! तुम अभी तक खड़े हो ! बैठो भाई, बैठो ।'

विलास बैठ गया, तब वकील बोला—'तो तुमने मेरा नाम कहाँ सुना ?'

'बहुत से लोग आपको जानते हैं ।'

'वे मेरी प्रशंसा करते हैं ?'

'जी ।'

'बहुत सुन्दर ! तुम बहुत बढ़िया आदमी हो । क्या नाम है तुम्हारा. ? हाँ, विलास । वाकई विलास नाम भी ख़ूब है । तुम भले आदमी हो ।'

विलास ने संकोच से कहा—'कृपा है आपकी ।'

युवक-वकील ने उत्साह से कहा—'तुम बड़े लायक हो, मैं तुम से मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ ।'

कुछ देर चुप रहने के बाद वकील ने फिर कहा—'तो लोग मेरी बहुत तारीफ करते हैं ? क्या कहते हैं वे ?'

'जी, वे आपकी प्रशंसा करते हुए आपके कार्यों का उल्लेख करते हैं ।'

'ज़रूर करते होंगे, वे मुझे जानते हैं । बहुत सुन्दर । तुम बहुत भले आदमी हो ।' फिर उसने घण्टी बजायी, जिसे सुनकर, वही आलसी और कठोर चपरासी कमरे में आया जो विलास को अन्दर भेजने के बदले एक रुपया माँग रहा था ।

'नाश्ता लाओ, दो आदमियों के लिए ।'

चपरासी अभिवादन करके जाने को हुआ कि विलास ने वकील से कहा—'मैं कुछ न खाऊँगा ।'

वकील ने उसकी बात सुनी और चपरासी की ओर देखकर कहा—'जाओ ।'

चपरासी चला गया तो विलास से कहा—'मेरा अनुरोध है । न मानोगे तो मुझे दुख होगा ।।'

वकील ने ध्यान से विलास का परिचय-पत्र देखा, फिर उसके चेहरे

को ग़ौर से देखकर कहा—'एक बात पूछूँ, अगर बुरा न मानो तो !'

सहज भाव से विलास ने कहा—'जी पूछिये, बुरा मानने की क्या बात !'

सकोच से वकील ने पूछा—'क्या क्रान्तिकारी पार्टी से तुम्हारा कुछ सम्बन्ध है ?'

अविचलित ढग से विलास ने वकील का प्रश्न सुना और कहा—'आपको ऐसा सन्देह कैसे हुआ ?'

वकील ने कहा—'मैने देखा है कि भारत के जो क्रान्तिकारी-दल रूसी क्रान्तिकारियों के अनुयायी हैं, उनके सदस्य भी रूसी क्रान्तिकारियों की ही तरह किसी को अभिवादन नही करते—जैसे कि तुमने मुझे नहीं किया ।'

विलास ने मुस्कराकर कहा—'आप इस बात को इतना तूल न दें ।'

'मेरे प्रश्न का उत्तर तुम दे सकोगे ?

'किसी प्रश्न का उठना मेरी बात के बाद अनुचित-सा है ।'

निश्चिन्त भाव से वकील ने कहा—'अगर तुम्हारा सम्बन्ध किसी ऐसी सस्था से है तो मै तुमसे मिलकर और भी अधिक प्रसन्नता का अनुभव करूँगा और तुमसे प्रार्थना करूँगा कि अपने कप्तान से मुझे भी परिचित करा दो, क्योंकि मेरे मन में ऐसे लोगों के प्रति बडी श्रद्धा है । मैं यह भी चाहता हूँ कि ऐसी सस्थाओं की कुछ आर्थिक सहायता करूँ ।'

विलास ने आदर से कहा—'आपकी इन भावनाओं के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ, लेकिन आपको यह जान कर दुखी न होना चाहिये कि मेरा उत्तर आपको निराश कर देगा ।'

वकील ने कहा—'ख़ैर, कोई बात नहीं, तुम एक बार सोच लो । फिर कभी मिलने पर मेरे प्रश्न का उत्तर तुम दे सकोगे तो मैं प्रसन्न होऊँगा ।'

विलास के कुछ कहने से पहले ही चपरासी ने नाश्ते के साथ कमरे

में प्रवेश किया और उसे कोने में रखी हुई तिकोनी मेज़ पर रख दिया।

वकील ने स्वयम् ही सब चीज़ें तरतीब से लगायीं और विलास से पुनः खाने का अनुरोध किया। विलास वकील की बात टाल न सका और मेज़ के सामने पड़ी कुरसी पर जा बैठा।

नाश्ते के बाद वकील ने सिगरेट सुलगायी और निश्चिन्त होकर कहा—'तो तुम्हारे लिए मैं क्या कर सकता हूँ, अब कहो।'

विलास ने संकोच से कहा—'मैं आपके पास नौकरी की खोज के सिलसिले में आया हूँ। मैंने सुना है कि आप उदार विचारों के व्यक्ति हैं और अपने दफ़्तर के लिए आपको एक टाइपिस्ट चाहिये।'

बच्चों की तरह खिलखिला कर हँसते हुए वकील ने कहा—'ज़रूर-ज़रूर, मैं वास्तव में बहुत उदार हूँ और मुझे एक टाइपिस्ट की भी आवश्यकता है, लेकिन अगर लेडी टाइपिस्ट हो तो मैं उसे अधिक पसन्द करूँ।'

विलास ने अपनी स्वाभाविक हँसी के साथ कहा—'लेकिन ऐसा क्यों?'

किंचित् व्यस्तता के साथ वकील ने कुछ क्षण बाद कहा—'क्योंकि, यानी, मतलब यह कि उनकी स्पीड अधिक होती है।'

विलास वैसे ही शान्त होकर बोला—'आप कितनी स्पीड चाहते हैं?'

वकील ने गम्भीरता से कहा—'कम से कम साठ शब्द प्रति-मिनट।'

विलास बोला—'मेरी स्पीड सत्तर शब्द है।'

वकील ने आश्चर्य से विलास की ओर देखा। फिर कहा—'लेकिन एक और कारण है विलास! मैं चाहता हूँ कि कोई ऐसा टाइपिस्ट हो जो हिन्दी टाइपिङ्ग भी जानता हो, क्योंकि मेरे यहाँ हिन्दी का भी काम रहता है और इसीलिए मुझे हिन्दी का भी टाइप राइटर लेना पडा है। बिलकुल नया है, अभी दिखाऊँगा तुम्हें।'

विरक्ति

'मैं अंग्रेजी से अधिक हिन्दी में योग्यता रखता हूँ। हिन्दी भी-टाइप कर सकता हूँ। शायद पैंतीस शब्द प्रति मिनट से अधिक ही कर लेता हूँ।' विलास ने प्रसन्नता से कहा।

'मैं तुमको अपने यहाँ रख लूँगा। चालीस रुपये दूँगा। कहो तैयार हो?'

'लेकिन मैं शॉर्टहैण्ड नहीं जानता।'

'कोई बात नहीं। तुम कल से आना।'

विलास जाने लगा तो वकील ने कहा—'और देखो, लोग पूछेंगे तो तुम मेरे विषय में क्या कहोगे?'

विलास ने कहा—'जैसा कि मैंने आपको पाया, मैं आपकी प्रशंसा करूँगा।'

वकील ने कुरसी छोड़कर कहा—'तुम बहुत अच्छे आदमी हो।'

विलास चला गया और दूसरे दिन से नियमित रूप से, वकील के कार्यालय में काम करने, आने लगा।

× × ×

पहले महीने का वेतन देते समय वकील ने विलास से कहा—'चलो, आज तुम मेरे घर चलो।'

विलास तैयार था, कहा—'चलिये।'

वकील के साथ विलास उसके शानदार बँगले में पहुँचा। वकील ने अपनी पत्नी से परिचय कराया और खानसामे को भोजन लाने के लिए कहा।

भोजन आ गया, तब विलास बोला—'मैं सिर्फ चाय पी सकता हूँ।'

वकील की सुन्दरी पत्नी ने कहा—'क्या आप नाराज़ हैं?'

हँसकर विलास ने कहा—'ऐसी बात नहीं है। आप चाय के अलावा मुझसे और कोई चीज़ खाने का आग्रह न करें।'

विलास के लिए चाय मँगायी गयी।

सिन्दूर की लाज

वकील की पत्नी आधुनिक फैशन के कपड़े पहने थीं, चेहरे पर पाउ-डर पुता था, ओठों पर गुलाबी चमकदार लाली लगी थी और सेन्ट की तीखी ख़ुशबू उनके वस्त्रों से उड़ रही थी। उनकी ओर विलास ने आश्चर्य से देखा। वे मुस्करा रही थीं।

किसी मुवक्किल का फोन आया था, सो वकील साहब विलास से यह कहकर चले गये कि वह अभी आराम से रेडियो सुने और सुनन्दा से बातें करे, और जब इच्छा हो तब चला जाय।

विलास की इच्छा वहाँ अधिक रुकने की न थी, पर उसने देखा कि अभी काफी समय है और मालिक की इच्छा है तो रुकने में कुछ हर्ज नहीं, सुनन्दा के साथ ऊपर वाले कमरे मे चला गया।

रेडियो खुला था, उसे बन्द करके सुनन्दा ने कहा—'अगर आप कहें तो मैं ही कुछ गाऊँ।'

'जैसी आपकी इच्छा।'

विलास की बात सुनकर सुनन्दा उदास हो गयी, फिर कहा—'अच्छा, चलिये हम लोग सिनेमा चलें।'

'नहीं, मैं सिनेमा न जाऊँगा।'

'वे भी आपकी विचित्र बातों का उल्लेख किया करते हैं, और आज मैं स्वयम् देख रही हूँ कि आप वास्तव में विचित्र व्यक्ति हैं।'

'जैसा आप लोग समझें।'

'आप कुछ उदास से हैं, क्या बात है? अगर मैं आपकी कुछ सेवा. ।'

हँसकर विलास बोला—'नहीं-नहीं, आप ऐसा न सोचें।'

'धन्यवाद', सुनन्दा ने कहा, 'क्या आप यहाँ सपरिवार रहते हैं?'

सुनन्दा की ओर देखकर विलास ने कहा—'जी नहीं, मैं अकेला हूँ।'

सुनन्दा ने कुछ अजीब ढंग से उसकी ओर देखा, फिर मुस्कराकर पूछा—'तो आपका ब्याह नहीं हुआ अभी?'

विलास ने उत्तर दिया—'जी नहीं।'

सुनन्दा की उत्सुकता शान्त हो गयी। एक लम्बी साँस लेकर उसने काउच का सहारा ले लिया।

विलास ने भेद की दृष्टि से उसकी ओर देखा और वैसा ही बैठा रहा। कुछ देर बाद कहा—'आप फैशन के पक्ष में हैं, ऐसा लगता है।'

तुरन्त ही सुनन्दा ने कहा—'स्वामी की इच्छा से और समाज में अपना दर्जा क़ायम रखने के लिए। लेकिन अब आप मुझे सीधे-सादे वेश में देखेंगे।'

उदासीन भाव से विलास ने सुनन्दा की ओर देखकर कहा—'मुझे क्या ?'

सुनन्दा ने कहा—'क्यों, आपको प्रसन्न होना चाहिये।'

विलास ने कहा—'हाँ, मैं प्रसन्न होऊँगा।

× × ×

जब एक सप्ताह तक विलास वकील के यहाँ काम पर नहीं गया, तब वह सुनन्दा के साथ उसके घर गया। देखा विलास मीयादी बुखार में पड़ा कराह रहा है। उसका एक मित्र उसके पास बैठा है और विलास शून्य दृष्टि से छत की ओर देख रहा है।

सुनन्दा ने कहा—'मिस्टर विलास, अपने कष्ट की सूचना तो दे दी होती, ताकि कुछ व्यवस्था कर सकती।'

विलास ने कम्पित स्वर में कहा—'इतनी ही कृपा काफी है।'

वकील ने कहा—'मैं अभी डाक्टर को भेजता हूँ।'

विलास का मित्र बोला—'इलाज ठीक है, आप कष्ट न करें।'

'वाह साहब, इसमें कष्ट की क्या बात', वकील ने कहा, 'आप जानते होंगे, मिस्टर विलास मेरे यहाँ काम करते हैं, उनकी देखभाल करने का मुझे नैतिक अधिकार है।'

विलास ने कहा—'आप अब वैसा न सोचें। मैं अब काम न करूँगा।'

सुनन्दा विलास के पास खड़ी कुरसी पर बैठकर बोली—'ऐसा क्यों ?'

विलास ने कहा—'देश के प्रति मेरा कर्तव्य पहले है।'

सुनन्दा ने कहा—'ऐसी क्या बात है ?'

विलास ने कहा—'आप इस समय मुझे आराम करने दें।'

कमरे से बाहर जाते हुए वकील ने कहा—'चलो सुनन्दा !'

सुनन्दा ने उठते हुए धीरे से विलास के पास झुककर कहा—'आपने मुझे देखा ?'

विलास ने मुस्करा कर कहा—'जी, देखा कि आप खद्दर के कपड़े पहने हैं और आपके चेहरे पर आज कृत्रिमता की वार्निश नहीं है।'

लाज से सहमी हुई सुनन्दा बोली—'यह सब आपके लिए है, स्वामी के लिए नहीं।'

विलास ने कहा—'न यह मेरे लिए है, न उनके लिए; यह आपका कर्त्तव्य है।'

सुनन्दा ने कहा—'यह आपके लिए है।'

फिर वह शीघ्रता से बाहर चली गयी।

विलास को इसी तरह बुखार में तड़पते हुए कई दिन और बीते। एक दिन जब कि उसे कुछ होश न था, रात के अन्तिम पहर में पुलिस आकर उसे गिरफ़्तार कर ले गयी। दूसरे दिन पत्रों में छपा कि विलास नामक व्यक्ति, सम्राट् की सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र करने वाली संस्था का कप्तान होने के कारण, गिरफ़्तार कर लिया गया है।

वकील और उसकी पत्नी ने यह समाचार आश्चर्य से पढ़ा। विलास के प्रति उनके हृदय में गहरी श्रद्धा और सहानुभूति उत्पन्न हो गयी। वकील ने निश्चय किया कि वह विलास से दूसरे दिन मिलेगा और उसकी ओर से मुकद्दमा लड़ेगा।

× × ×

दूसरे दिन प्रातःकाल अख़बार आया, जिसमें बुखार का ज़ोर बढ़ जाने से विलास की मृत्यु होने का समाचार था। सुनन्दा वकील से पहले ही जागती है, उसीने पहले यह समाचार पढा। वह रो न सकी बस! लेकिन उसकी समझ में नहीं आया कि विलास के मन में उसके प्रति जो विरक्ति थी और जिसे दूर करने का उसने निश्चय किया था, वह विरक्ति दूर हो गयी या वैसी ही उसके साथ चली गयी। और विलास के जीवन का आदर्श? वह भी जीवित न रहा। अगर सुनन्दा उस आदर्श की पूर्ति करने का, मन में, निश्चय करे तो आश्चर्य ही क्या?

सुख की नींद—

बुखार और कमज़ोरी के कारण असहायावस्था में पडा हुआ सतीश खरहरी खाट के खुरदुरेपन को भूल गया और बग़ल में रखे हुए उन दोनों सिफारिशी पत्रों को एक बार फिर पढ गया, जो कि पिछले रविवार को पडित जी ने किन्हीं मित्रों को लिख कर दिए थे कि सतीश को कहीं काम से लगा दें—पढा-लिखा है, ईमानदार है, पर इस समय बेकार है। लेकिन आज सप्ताह भर बीत चुका है और जाने क्या हुआ कि उसी दिन से उसे बुखार आने लगा। पत्र वैसे ही पड़े रहे और बेकारी की व्यथा मे बीमारी का शारीरिक कष्ट भी उसे झेलना पड़ रहा है।

मित्र आते हैं तो कुछ खाने-पीने और दवादारू का प्रबन्ध कर जाते हैं। उसके मित्र भी तो उसी श्रेणी के व्यक्ति हैं, नहीं तो खाने-पीने का प्रबन्ध हो ही जाता। मित्र ही समय पर काम आते हैं। पर वह बेकार है और बेकार के मित्र अपना ही पेट कठिनता से भर पाते हैं, क्योंकि अधिकतर वे स्वय भी बेकार होते हैं। और सतीश का तो ऐसा कोई भी मित्र नही कि जो उसे आर्थिक सहायता पहुँचा सके।

उस दिन जब विवश होकर उसे पडित जी के सामने अपनी दशा का वर्णन करना पड़ा, तब वे भी कितने परेशान हो गए थे और कितना धीरज बँधाया था। कहा था—'घबराना मत! तुम अभी युवक हो, मुसीबतों से घबराना कायरों का काम है, और तुम कायर भी हो सकते हो, यह मैं नहीं सुनना चाहता।'

सतीश ने करवट ली और पानी का गिलास उठा कर, पपडी जमे हुए सूखे ओठों से लगा लिया। गिलास ख़ाली करके नीचे रख दिया और फटा हुआ कम्बल ठीक से अपने चारों ओर लपेट लिया।

सुख की नींद

जिस मोटर गैरेज में वह इतने दिनों से रह रहा है, उसमें कभी किसी की शानदार कार रखी जाती रही होगी। तभी उसे अनुभव हुआ कि टीन का बड़ा फाटक खूब ठंडा हो गया है और उसकी ठण्ड के कारण अन्दर की हवा और भी सर्द हो गई है। एकबारगी उसे फुरफुरी-सी लगी और कम्बल चेहरे पर ढक लिया। सरदी के कारण उसके दाँत किटकिटाने लगे और वह सोचने लगा कि इस समय उसका कोई ऐसा मित्र आ जाए, जिसके पास कम से कम चार पैसे तो हों ही, ताकि वह उसे एक प्याला चाय पिला सके।

काफी देर बाद उसने चेहरे से कम्बल हटाया और देखा कि टीन के फाटक की दरारों से आने वाला प्रकाश धुँधला पड़ गया है और लोगों की चहल-पहल बढ गई है। अब काम करने वाले अपने दफ़्तरों से वापस लौट रहे होंगे। अपने बच्चों के लिए कुछ न कुछ लाए होंगे। घर पर उनकी प्रतीक्षा होती होगी। शायद कोई दोस्त आता हो, यही सोच कर वह आँखें खोले फाटक की ओर ताकता रहा।

बहुत देर हो गई, तब उसने अपनी लाल-लाल आँखों को बन्द कर लिया और कम्बल के अन्दर से हाथ निकाल कर माथे को दबाने लगा। पूरी आस्तीन फटी हुई थी और हाथ में सरदी का स्पर्श असह्य होते ही, एक गहरी साँस लेकर उसने फिर कम्बल ओढ लिया।

टीन के बड़े फाटक की खड़खड़ाहट के साथ धुँधली सन्ध्या का हलका प्रकाश अन्दर आया, तब सतीश ने कम्बल को चेहरे से अलग हटा दिया। देखा, पडोस में रहने वाले मास्टर साहब का छोटा बच्चा अन्दर आ गया है और आश्चर्य से उसकी ओर देख रहा है।

पास आकर उस बच्चे ने एक किताब सतीश के पास रखते हुए कहा—'जीजी अपने साथ ले गई थीं, इसीसे अभी तक तुम्हारी किताब नहीं दे पाया। उन्होंने कहा है कि कोई दूसरी किताब दे दो। यह भी कहा है कि अब की बार जल्दी दे देंगी।'

सतीश सोच रहा था कि इस बच्चे से कह दे कि भइया, अपनी जीजी से ज़रा सी चाय बनवा लाओ, तो किताब दें। पर उससे यह कहते न बना। वह बोला—'अभी जाओ मुन्ने भैया! तबियत ठीक हो जाए तब दे दूँगा।'

बच्चे ने कहा—'आप की तबियत ख़राब है?'

सतीश ने कहा—'हाँ, तबियत ठीक होने पर मैं बुला कर दे आऊँगा।'

उसे शाम की तीखी हवा का उस द्वार से आना खल रहा था। वह सोच रहा था कि कब यह लड़का जाए और द्वार बन्द हो कि यह ठडी हवा उसके फटे कम्बल और खरहरी खाट के छेदों से आकर उसके शरीर को स्पर्श न कर सके।

बच्चे ने पूछा—'आप कब अच्छे हो जाएँगे?'

एक सप्ताह से खाट पर पड़ा हुआ बीमार सतीश उसके प्रश्न पर हँस पड़ा, फिर कहा—'दो-तीन दिन में ठीक हो जाऊँगा।'

'तो मैं परसों आऊँगा।' कहकर मुन्ने शीघ्रता से बाहर चला गया। वह किवाड़ बन्द करना भूल गया था और सतीश ने कई बार उसे पुकारा भी कि वह द्वार मेड़ दे पर वह छोटा बच्चा जा चुका था।

सतीश में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह उस तीखी और सर्द हवा मे उठ कर, दरवाज़ा बन्द करके पुनः अपने बिस्तर पर आ सके। पैरों को मिला कर कुछ मिनट तक वह सिकुड़ा हुआ लेटा रहा, फिर न रहा गया तो उठने का प्रयत्न करने लगा।

इतने ही में वह बच्चा फिर आया। सतीश वैसे ही लेट गया और कहा—'पहले किवाड़ बन्द कर दो मुन्ने! मुझे सरदी लग रही है।'

मुन्ने वापस लौट कर किवाड़ बन्द करने लगा, तब सतीश ने कहा—'मुन्ने भैया! एक प्याला चाय लाओगे?'

मुन्ने किवाड़ बन्द कर के उसके पास आ गया था। उसकी ओर

देख कर बोला—'लाऊँगा, बन रही है। अभी बाबू जी आएँगे, तब तक मैं ले आऊँगा। और जीजी ने कहा है कि किताब दे दो—कल ही लौटा देंगी। वे तो समझती हैं कि आप बहाना बना रहे हैं। मैंने तो कहा था कि जीजी, सतीश भैया को बुखार है।'

'उन्हें तुम्हारी बात पर यक़ीन नहीं हुआ तो देखो, सामने वाली अलमारी में से कोई किताब उठा ले जाओ।' सतीश ने धीरे से कहा और मुन्ने अलमारी में से एक किताब उठा लाया। तब सतीश ने कहा—'सुनो, बाहर जाकर किवाड़ बन्द कर देना और मुझे चाय दे जाना बड़ी सरदी लग रही है। बीमार होने के कारण मैं बना नहीं पाऊँगा।'

जब मुन्ने बाहर से द्वार बन्द करके चला गया तो सतीश ने सन्तोष की साँस ली। उसने मुन्ने से किसी न किसी तरह चाय के लिए कह ही दिया था।

गली के मोड पर लगी हुई बिजली की बत्ती की रोशनी दरवाज़े में से छन कर आने लगी थी और कमरे में व्याप्त घोर अन्धकार के बीच पड़ा हुआ सतीश अपने भविष्य के बारे में सोच रहा था। अब चाहे कुछ हो, वह कुछ न कुछ तो करेगा ही। किसी दूसरे शहर में चला जाएगा तो छः आने रोज पर कहीं न कहीं, ईंटें ढोने का, काम तो मिल ही जाएगा। यह भी न हुआ तो फौज में भरती हो जाएगा। घुट-घुट कर भूखों मरने से तो यही अच्छा होगा कि पेट भरकर देश के नाम पर मर जाए।

कमरे का अँधेरा बड़ा मनहूस लग रहा था, लेकिन तीन दिन से मोमबत्तियाँ खत्म हो गई थीं और अब पैसे नहीं थे कि किसी से कहकर मँगा ले। पंडित जी ने कहा था—'तुम युवक हो। घबराने से विपत्तियाँ कम न होंगी। विपत्तियों का मुक़ाबला करना सीखो, तभी जीवन-संघर्ष में सफलता पाओगे।'

अब कोई डाक्टर ऐसी दवा दे दे कि चार मिनट में ही अच्छा हो

जाए और कल तक घर से बाहर निकलने की शक्ति आ जाए तो कहीं काम-धन्धा देखा जाए और काम जो भी मिलेगा वह कर लेगा।

लेकिन आधा घन्टा बीत चुका है और मुन्ने अभी तक चाय लेकर नहीं आया। इससे तो अच्छा यही होता कि वह कहता ही नहीं। शायद मुन्ने को याद ही न रही हो। अगर याद न रही हो तब तो अच्छा है, लेकिन उसके कहने पर भी चाय न भेजी गई तब अवश्य ही अच्छा नहीं हुआ। लेकिन यदि मुन्ने ने कहा होगा तब तो उन्हें भेजनी ही चाहिए। चाय कोई क़ीमती चीज भी नहीं है और फिर एक बीमार आदमी के माँगने पर तो चाय की जगह दूध ही उन्हें भेजना चाहिए।

तब धीरे-धीरे टीन का फाटक खडखड़ करता हुआ खुलने लगा और मुन्ने अन्दर आ गया। सब से पहले सतीश को यह देखकर निराशा हुई कि एक तो वह इतनी देर में आया और दूसरे उसके हाथ में चाय का प्याला भी नहीं है। फिर उसने देखा कि मुन्ने के चेहरे पर हल्की उदासी छाई हुई है।

पास आकर वह बोला—'सतीश भैया ! जीजी कहती हैं कि चाय नुक़सान करेगी, दूध पीलें।'

सतीश सोच रहा था कि पुछवाने की क्या आवश्यकता थी, चाय नुकसान करती है तो दूध भेज ही क्यों न दिया ?

मुन्ने बोला—'और उन्होंने कहा कि सबेरे बन्सी को भेज देंगी तो उसे अपना हाल बता देना। तब वह डाक्टर साहब के घर से दवा ले आएगा।'

'मुन्ने भैया !' सतीश ने प्यार से कहा, 'तुम चाहे चाय ले आओ चाहे दूध पर कुछ न कुछ लाओ ज़रूर।'

मुन्ने दरवाज़े के पास जाकर बोला—'और यह भी कहा था कि आप घबराएँ नहीं, जल्दी अच्छे हो जाएँगे।'

मुन्ने किवाड़ भेंडकर चला गया, तब सतीश सोचने लगा कि शायद मुन्ने की जीजी को उसने कभी देखा हो पर उसे कुछ याद नहीं [illegible] वकील साहब को एक-दो बार ज़रूर देखा है। मुन्ने ही अपनी जीजी के बारे में कभी-कभी बातें किया करता है कि वह बडी अच्छी है, उसे पैसे देती है। पढाती है, तो चाहे वह अपना सबक़ भूल ही जाए, पर कभी पीटती नहीं है।

सब से पहले जब मुन्ने को उसने देखा था, तब वह एक और बच्चे के साथ चुपचाप दरवाज़े पर खडा हुआ था। और बच्चों के प्रति सतीश के हृदय में जो प्रेम था उसीके कारण मुन्ने के साथ उसकी दोस्ती हो गई थी। कभी-कभी मुन्ने अपनी जीजी के लिए उससे पुस्तकें माँग ले जाता था। लेकिन सतीश ने पहले कभी उसकी जीजी के बारे में नहीं सोचा था। आज वह सोच रहा था कि यदि मुन्ने उसके लिए दूध अथवा चाय ले आया, तो अवश्य ही उसकी जीजी दयालु और समझदार है।

थोडी देर में मुन्ने अपने नौकर के साथ आया। नौकर ने दूध का गिलास सतीश को दे दिया।

जब ख़ाली गिलास लिए नौकर खड़ा रह गया तब मुन्ने ने कहा, 'तुम जाओ बसी! जीजी पूछें तो कहना अभी आता हूँ।'

बसी चला गया तो मुन्ने ने कोट की जेब से एक मुड़ा हुआ काग़ज सतीश को देकर कहा—"यह जीजी ने भेजा है।"

सतीश ने पढा—"पूज्य भाई साहब! आप को जिस चीज की ज़रूरत हो, मुझसे कहलवा दिया करें। बहन के होते हुए, सकोच करके, अधिक कष्ट न उठाएँ।"

सतीश ने काग़ज मोड़कर रख लिया। फिर मुन्ने से कहा—'जीजी से कहना कि सतीश भैया ने कहा है, उनका अहसान कभी न भूलूँगा।'

'अच्छा', कहकर मुन्ने चला गया। सतीश अभी-अभी सरदी का

अनुभव कर रहा था। अब जाने क्यों, उसे गरमी मालूम हो रही थी।

कई बार उसने वह पत्र पढ़ा। इस बार ज्योंही उस पत्र को उसने क़मीज़ की जेब में रखा, त्योंही द्वार खुला और लक्ष्मणदास उसके पास आ गया।

लक्ष्मणदास सतीश का शुभचिन्तक है और अक्सर उसकी मदद करता रहता है। उसकी दूकान है और तभी तो सतीश को थोड़ा सा, गर्व है कि कम से कम उसका एक दोस्त बेकार नहीं है।

नाड़ी देखकर लक्ष्मणदास ने कहा—'अब बुख़ार तो है नहीं, कमज़ोरी है, सो दो-चार दिन में दूर हो जाएगी।' फिर जेब से दो सेव निकाल कर कहा 'ये सेव अभी खा लो, सुबह फिर लेता आऊँगा।'

सतीश ने सेव मुँह से काटा ही था कि लक्ष्मणदास ने कहा—'और हम लोग पहली तारीख़ को जबलपुर की नुमाइश में दूकान ले जा रहे हैं। तुम झटपट ठीक हो जाओ। तुम्हें हमारे साथ चलना होगा।'

सतीश ने कहा—'ठीक हो गया तो चलूँगा ही। अब मुझे कुछ नहीं है, काम करूँगा—चाहे मज़दूरी हो चाहे कुछ।'

लक्ष्मणदास ने कहा—'मज़दूरी क्यों करोगे? जब तक मैं हूँ, तब तक मज़दूरी करने की बात न सोचना।'

हँसकर सतीश ने कहा—'अपनी दूकान में मेरे लिए काम निकाल लो—मज़दूरी न सही, मेहनत तो करूँगा ही।'

लक्ष्मणदास ने कहा—'तुम्हारे लिए मेरे पास हमेशा काम है, पर तुम करो भी!'

'नहीं, अब मैं काम करूँगा!' सतीश ने कहा।

'मैं कल फिर आऊँगा।' कहकर लक्ष्मणदास चला गया।

सतीश सोच रहा था, काम करना ही चाहिए। यह काम मिल ही रहा है, कुछ हर्ज नहीं—दूकान पर बैठना बुरा नहीं है। तब उसे ख़याल आया कि मुन्ने से उसकी बहन का नाम तो उसने पूछा ही नहीं।

सुख की नींद

फिर धीरे-धीरे उसे नींद आने लगी और लगा कि वास्तव में बुख़ार उतर गया है और दो एक दिन में कमज़ोरी भी दूर हो जाएगी।

बेकारी की चिन्ता से आज जैसे वह मुक्त हो गया और पहली बार सुख की गहरी नींद उसे आई है।

कफ़न की ओट में—

१

देवीदयाल ने कभी किसी शहर की शक्ल न देखी थी, फिर भी वह अपने मन में शहर की काल्पनिक रूप रेखा खींच लेता था। गाँव के मिडिल स्कूल की पढ़ाई जब उसका शकर समाप्त कर चुका तब उसने अपने जान पहचान के एक व्यक्ति के नाम पत्र लिख कर शकर को पढने के लिए शहर भेज दिया।

शकर शहर चला गया। एक बार वह दो दिन के लिए वहाँ अपने स्कूल के लड़कों के साथ नुमायश के टूर्नामेंट मे शामिल होने के लिए आया था, तभी से उसका मन गाँव मे रहने से उचट गया था। न जाने शहर में ऐसा क्या था जो उसे अपनी ओर खींच रहा था। उसके हृदय पर शहर की रङ्गीनियों ने ही इतना प्रभाव डाला था कि गाँव के स्वर्गिक जीवन को शहर से तुच्छ समझने लगा।

बूढ़ा देवीदयाल गाँव के ज़मींदार के यहाँ चपरासी था। चपरासी क्या, उसे फसल भी देखनी पड़ती थी, क़र्ज़े की उगाही भी वही करता था और घर का काम भी उसी के ज़िम्मे था। उसे ज़मींदार दस रुपये नक़द देते थे, साथ ही खाने-कपड़े का ख़्याल भी उन्हीं को रखना पड़ता था। ज़मींदार की आयु पच्चीस वर्ष थी। देवीदयाल उनके पिता के समय से ज़मींदारी के काम में हाथ बँटाता रहा था, इसीलिए पिता की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी ने भी अपने कर्तव्य को निभाने में कोई कमी न की। यहाँ तक कि देवीदयाल और शकर, दोनों ही, पिता-पुत्र ज़मींदार के ही यहाँ भोजन भी करते थे। ज़मींदार काम की ओर नहीं देखता था, वह अपने कर्तव्य को देखना अधिक उचित समझता था, तभी तो वह देवीदयाल और शकर के लिए इतना करता था, वर्ना

इतने काम के लिए गाँव का कोई भी आदमी ५) पर तैयार हो जाता।

देवी की इच्छा थी कि वह अपने पुत्र को मिडिल पास करने के बाद ज़मींदार से कह कर कारिन्दा करा दे, परन्तु एक तो शकर की इच्छा और दूसरे ज़मींदार की राय—उसे शकर को शहर भेज ही देना पड़ा। तब ज़मींदार ने पाँच रुपये देवी की तरक्क़ी कर दी। देवी बारह रुपये महीने शकर को भेज देता था और स्वय एक रुपया भी ख़र्च न करता था, उसे ज़रूरत ही क्या थी? खाना-कपड़ा मिल ही जाता था। वह शकर को गाँव से घी और दूसरी चीज़ें भी, जो शहर में ठीक नहीं मिलती, भेज देता था।

देवी को शकर के पढ़ाने से जितनी प्रसन्नता थी, उतना ही उसे उसके अलग होने का दुख भी था। वह रात को घण्टों सोचता रहता—शकर ही तो उसके एकाकी जीवन का एकमात्र सहारा था, उसकी माँ ने, १५ वर्ष पहले, जब शकर पैदा हुआ था और वह मर रही थी, अन्तिम समय भी कहा था, 'उसे किसी तरह तकलीफ़ न हो' और आज शकर अकेला इतने बड़े शहर में पड़ा हुआ था। अंग्रेजी की पढ़ाई मुश्किल भी होती है। रात-रात भर जग कर पढना पड़ता होगा और फिर क्या जाने कोई चोर बदमाश उसके पीछे पड़ जाये। वह अभी पन्द्रह वर्ष का ही तो है। यही सब सोचते-सोचते बूढे देवीदयाल की आँखों से आँसू निकल कर झुर्रियोंदार चेहरे पर बह जाते। कभी-कभी उसे रात-रात भर नीद न आती, वह बस शकर के ही बारे में सोचता रहता था। जमींदार उसे समझाते रहते कि यों सुस्त रहने से काम नहीं चलेगा। पर अब देवी की हँसी न मालूम कहाँ लोप हो गई थी।

जब देवी को शकर की चिट्ठी मिलती, तब वह एक दम बेचैन हो जाता, सोचने लगता, शकर को उसकी याद आती है, उसे भी तो शकर की याद आती है। पर इस याद से क्या, इस तरह तो वह कुछ भी पढ-लिख न पायेगा। वह इस तरह याद से परेशान होकर कुछ पढ़ लिख

पाएगा भला ! फिर याद तो आनी ही है, पर भुलाना चाहिए। तभी वह अपने आदेशपूर्ण वाक्यों में शंकर को पत्र लिख कर समझाता।

पहले शकर की आठ-दस चिट्ठयाँ महीने भर में देवी को मिलतीं थीं, पर धीरे-धीरे पत्र आने का क्रम टूटता-सा गया। यहाँ तक कि फिर तो महीने भर में केवल एक पत्र रुपये की पहुँच का ही शंकर भेजता। देवी को यह सब बड़ा बुरा-सा लगने लगा। ऐसी पढाई भी क्या, जो अपने घरवालों को भी भूल जाये। और वह पूरे तीस दिन यों ही सोचते-विचारते काट देता। इन सब सोच विचारों और चिन्ताओं ने देवी के स्वास्थ्य पर बुरा असर किया, वह दिन पर दिन घुलने लगा, हड्डियाँ रह गईं।

ज़मींदार कहते थे शहर के स्कूलों मे दिवाली, बड़े दिन, मुहर्रम और होली पर ख़ूब छुट्टियाँ होती हैं। पर दिवाली भी चली गई, बड़ा दिन भी बीत गया, मुहर्रम की भी छुट्टियाँ हुई ही होंगी, पर शकर आया क्यों नहीं ? आना चाहता तो आता ज़रूर, लिख देता है बहुत पढाई है, पर ऐसी भी क्या पढाई कि एक दिन की भी छुट्टी नहीं मिली। ऐसा नहीं हो सकता। ज़मींदार तो सब बातें जानते ही हैं, छुट्टी ज़रूर होती हैं, फिर वह आया क्यों नहीं ? पहले वह लिखता था—'कका, तुम्हारी याद आती है।' याद आती तो आता नहीं ? साल भर तो होने आया। छुट्टी नहीं हुई तो अर्ज़ी से तो मिल जाती। दो ही दिन को चला आता। उसे क्या हो गया है ? कहीं वह उसे भूल तो नहीं गया......। देवी दातून लाते समय सबेरे-सबेरे खेत की मुँडेर पर चला आ रहा था, तब यही सब विचार उसके मस्तिष्क में घूम रहे थे। कुए पर हाथ-पैर धोकर वह सीधा ज़मींदार के घर गया। ज़मीदार उस समय दूध पीकर बाहर आ बैठे थे।

देवी वैसे तो वहीं रहता था, परन्तु इस तरह समय-असमय वह ज़मींदार से मिलने के लिए बहुत आवश्यक काम होने पर ही जाता था।

ज़मींदार देवी को इस तरह आया देख आश्चर्य से बोले—'सवेरे २ कैसे आये देवी चाचा ?'

सामने ही पड़ी हुई खाट पर बैठ कर देवी ने धीरे से कहा—'कुछ न पूछो भैया, इस शकर से तो मैं परेशान हो गया।'

ज़मींदार इन लोगों की बातों से अनभिज्ञ नहीं थे उन्होंने पूछा—'क्या कोई चिट्ठी आई है ?'

'चिट्ठी नहीं भैया, देख तो रहे हो साल भर होने को आया। इतनी छुट्टियाँ आई पर यह नहीं हुआ कि दो दिन को चला आता। तुम्हीं बताओ, ऐसी पढाई भी क्या कि घरवालों को भी भुला दे !' देवी ने कहते २ एक निःश्वास छोड दी।

ज़मींदार ने कहा—'इस तरह अफसोस न किया करो देवी चचा होली आ रही है, वह आयेगा ज़रूर।'

देवी की आँखों में आँसू छलक रहे थे। आँखों पर हाथ फेर कर उसने कहा—'नहीं आयेगा भैया ! वह कैसे आयेगा, मैं उसका होता ही कौन हूँ जो वह यहाँ आये ?'

'दुखी न हो चचा ! यदि वह न आना चाहता हो तो तुम ही जाकर उसे बुला लाओ।' समझाते हुए जमींदार ने कहा।

'मैं भी सोच रहा हूँ चला जाऊँ, देख आऊँगा ऐसी क्या पढ़ाई है, जो यहाँ छुट्टियों में भी नहीं आ पाता।' अधीरता से देवी ने कहा।

'आज ही चले जाओ।' फरशी को एक ओर सरका कर ज़मींदार अन्दर चले गये, और कुछ देर बाद कुछ रुपये लाकर देवी के हाथ पर रख दिये।

देवी ने रुपये लेकर कहा—'मेरे पास रुपये थे तो भैया, चला जाता।'

'क्या हुआ, कहीं ज़रूरत पड़ गई तो !' जमींदार ने देवी को सान्त्वना दी और देवी चला गया।

२

शहर में आकर शकर अपने पिता के परिचित-व्यक्ति के यहाँ रहने

लगा। स्कूल में सातवें दरजे में उसका नाम लिख लिया गया। खाने के लिये वह पाँच रुपये घर में देता था, तीन रुपये फीस के चले जाते थे, चार रुपये पास बचते थे। जिनके यहाँ वह रहता था, वे म्यूनिस्पैलिटी के एक मिडिल स्कूल में १५ रुपया मासिक पर नौकर थे, घर पर उनकी पत्नी मात्र ही थीं।

अपने स्कूल के लड़कों से मित्रता करने में शकर को देर न लगी और न कुछ प्रयत्न ही करना पड़ा। शहर के लडके गाँव के लड़कों से अधिक खुले मिजाज़ के होते है, साथ ही उनका ख़र्च भी बढा-चढा होता है। शंकर भी सोहबत के असर से बच न सका। स्कूल जाने से पहले और स्कूल से आने के बाद, वह घर पर नही रहता था। उसका घर आने से एक ही तात्पर्य था—भोजन करना अथवा रात को सोना। घर वाले पूछते, तो कह देता पढाई के कारण इतना व्यस्त रहना पड़ता है। बस, एक ही बात से सारी समस्या हल हो जाती। स्कूल मे उसके कई मित्र हो गये थे, फिर तो शहर के भी कुछ दूसरे लोगों से उसका परिचय हो गया।

सोसायटी में रह कर वह अछूता न रह सका। धीरे-धीरे सिगरेट पीना भी सीख लिया, सिनेमा का शौक़ भी उसे अपनाना पड़ा, हलवाई और कपड़े वाले के उधार के दाम बढने लगे। पर इस सब की चिंता उसे नहीं थी। जब कभी ज़रूरत पड़ती वह, पिता से भी चार-छै रुपये अपनी आवश्यकता बता कर मँगा लिया करता।

शहर के जीवन ने उसे अपने वातावरण मे इतना जज़्ब किया कि वह गाँव से घृणा करने लगा। गाँव से पिता की चिट्ठियाँ आतीं तो लिख देता, पढ़ाई है, आ न सकूँगा। यही वह घर मे भी कहता, तभी तो कोई उससे कुछ कहता न था।

गाँव से खद्दर की एक कमीज़ और मारकीन की मोटी धोती लेकर आया था। पर आठ महीने पूरे होते-होते उसके पास महीन धोतियाँ, मलमल

के कुरते और सेंडोकट बनियान के अलावा सिल्क का एक सूट भी हो गया था। गाँव से वह एक सादी सी चप्पल पहन कर आया था, यहाँ उसे सैंडिल ही पहनना उचित मालूम हुआ।

× × ×

जिस दिन शाम को देवी शहर पहुँचा, उस दिन शकर उसे मिला नही। घर में पूछने पर मालूम हुआ कि इम्तहान सर पर है, बोर्डिंग में 'कम्बाइन्ड स्टडी' को जाता है। देवी ने समझा, शकर सचमुच पढ़ाई में इतना परेशान रहता है, तभी वह आ नहीं पाता होगा उसे रात-रात भर छुट्टी नहीं मिल पाती पढने से। वह शकर को देखने के लिए बेचैन हो रहा था। उसने बोर्डिंग जाने का विचार किया पर किससे कहे, घर-वाले उसे पागल कह देंगे। लड़का पढने ही तो गया है। सुबह तो आयेगा ही, फिर इतनी बेचैनी क्यों हो रही थी उसे?

रात भर देवी ने शकर के ही सम्बन्ध में विचार करते २ काटी। प्रातःकाल सात बजे के बाद शकर आया। पिता को एकाएक आया देख, वह हक्का-बक्का-सा रह गया। फिर मी उसने पिता के पैर छुये। देवी ने उसे गोद में कस लिया। फिर पिता-पुत्र में बाते होती रहीं।

देवी ने सोचा, अब तो उसका शकर बहुत अच्छा लगने लगा है। गाँव में ऐसा एक भी लडका नहीं है। बिलकुल बाबू हो गया है। अग्रेजी फैशन के बाल कटे हैं, माँग कढी हुई है, गाँव में इन्हीं बालों में धूल भरी रहती थी। अब कपड़े कितने साफ़ और बढ़िया हैं। वह अपने पुत्र का नया रूप देखकर, एक बार प्रसन्नता से, गद्‌गद्‌ हो गया।

छुट्टियाँ होने को अभी चार दिन बाक़ी थे। पत्रों की बात और है, अब तो उसका पिता जब स्वय ही उसे लेने आया है तब उसकी बात शकर कैसे टालता। उसी दिन चार दिन की अर्जी देकर शकर होली मनाने के लिए पिता के साथ गाँव चला आया।

उस गाँव के दो ही तीन लड़के शहर में पढ़ते थे, परन्तु वे शकर

की तरह वहाँ से एकदम अपना काया-पलट करके नहीं आते थे, इसलिये जब शकर को गाँव वालों ने नई वेषभूषा मे देखा तो वे दग रह गये।

ज़मींदार की उम्र कम थी पर उन्होंने भी अपने पिता के सामने शहरी जीवन की देहरी पर क़दम रखा था और उससे ही उन्हें जो कटु अनुभव हुआ था, वह उसे अभी तक भूले न थे। शकर का रङ्ग-ढङ्ग देख कर वे सब कुछ समझ गये। उन्होंने सोचा, शंकर बिगड़ रहा है, यदि ठीक से नियंत्रण न हो सका तो ..!

३

ज्यों ज्यों शकर स्कूल की पढाई में बढा था, त्यों-त्यों उसका चाल-चलन और दूसरी आदतें भी बिगड़ चलीं थी। पिता के प्रति उसका आदर नाममात्र को ही रह गया था, केवल २५) रुपये प्रति-मास पाने के ही कारण वह उसे पत्र लिखता था। परन्तु देवी इन तीन वर्षों में भी शकर को उतना न समझा जितना उसे दूसरों ने समझ लिया था।

वह जानता था कि उसका पास होना कठिन है, क्योंकि पढ़ा होता तो पास होता। वह तो रात दिन लड़कों के साथ घूमने-फिरने और इधर-उधर समय काटने के सिवाय करता ही क्या था? वह अपने बूढ़े बाप और सज्जन ज़मींदार का रुपया बर्बाद करता रहा है.. ..!

रिज़ल्ट आने से कई दिन पहले शकर शहर चला गया था। उसने सोचा अब उसे अपना जीवन इस तरह बर्बाद नहीं करना है—पिता क्या सोचते होंगे, ज़मींदार के ख़्याल उसकी तरफ़ से ख़राब हैं ही, फिर भी वे उसे इतना रुपया देते हैं। परन्तु शहर में आते ही उसके सब विचार उड़ गए। फिर वही हाल-चाल शुरू हो गया।

रिज़ल्ट आया। कई बार शकर ने पूरे अख़बार की एक-एक लाइन पढ़ी। कहीं भी तो उसका नाम न था! अख़बार वाले ने ही यह भूल की होगी, वह फेल न हुआ होगा। उसके कई मित्र भी फेल हुए थे। पर शकर की बात और है, वह कहाँ से करेगा दुबारा इतना ख़र्च? पिता

और ज़मींदार सुनेंगे तो उन्हें कितना दुख होगा।

वह घर आया। ज़मींदार और देवी दोनों ने ही उसे अगले वर्ष प्राईवेट इम्तहान देने की राय दी। देवी को दुख अवश्य था पर उस का कर्तव्य शकर को सान्त्वना देना ही था।

शकर कुछ दिन तक न जाने कैसा अनमना-सा गाँव में फिरता रहा।

एक दिन प्रातः काल जब देवी सोकर उठा, तो उसने शकर की खाट को खाली पाया, बिस्तर तक वहाँ न था। एक काग़ज जरूर पड़ा था। देवी का हृदय न जाने क्या सोच रहा था, वह परेशान-सा हो गया—कहाँ गया शकर सवेरे-सवेरे? काग़ज़ उठाया तो देखा, वह शकर का ही लिखा हुआ है। उसमें दो ही लाइनें लिखी थीं—

'कक्का, फ़ेल होने का मुझे बड़ा ही दुख है। गाँव में तबियत भी नहीं लगती। आज मैं तुम्हारे बक्स में से पचास रुपये लेकर कहीं नौकरी की तलाश में जा रहा हूँ। मुझे खोजना मत—शकर।'

देवी के पैरों तले से ज़मीन खिसक गई। वह घोर अन्धकार में जैसे असहाय खड़ा रह गया हो। वहीं खाट पर बैठकर देवी रोता रहा।

देवी ने सोचा, ऐसा भी क्या लड़का जिसे अपने बाप की चिन्ता नहीं। शहर में ही नौकरी करनी थी तो उससे कहकर चला जाता, वह उसे रोक थोड़े ही लेता। पर वह तो चला गया! भगवान ने उसे ही रोने को छोड़ दिया!!

जमींदार धीरज बँधा सकते थे, सो ही उन्होंने किया। और देवी के जीवन का वही क्रम चलता रहा, पर उसमें शिथिलता आती गई। रात को रोज ही जैसे उसके लिए रोने का नियम-सा बन गया था। वह यही सोचता रहता कि शकर कहाँ होगा, कैसे होगा? सुना है—एम० ए० पास लड़कों को भी नौकरी नहीं मिलती, फिर शकर कहाँ मारा-मारा फिर रहा होगा, कहाँ अकेले दूर देश में भटकता होगा... ??

सिन्दूर की लाज

दिन भी बीतते गए, महीने भी जाने कहाँ उड़ गए; और बड़ी-बड़ी दो साले भी हवा के झोके की तरह सन्न से निकल गई, पर शकर का कोई भी पता देवी को न मिला। वह रोता ही रहता है। रो-रोकर ही शायद अब वह जीवन के अन्तिम दिन काटेगा। उसे अब अपने बेटे की आशा छोड़ ही देनी चाहिए!

एक वह दिन भी आया जब ज़मींदार के एक परिचित सज्जन कानपुर से आये जो देवी और शकर को भी जानते थे। उन्होंने देवी से कहा कि शकर कानपुर मे है। और देवी तो कुछ भी पता ठिकाना न पूछ सका था! उसे अपने लड़के का पता मिल गया था—वह कानपुर मे ही है। देवी कानपुर जायगा।

× × ×

शकर गाँव से चला तो आया, पर वह कहाँ किस तरह नौकरी खोजे? स्कूल के लडकों ने जब उसका हाल सुना तो ऐसे अलग हुए जैसे उन्होंने उसे देखा ही नहीं। तीन ही दिन बाद शकर वहाँ से सीधा कानपुर पहुँचा। अपने गाँव से इतनी दूर आकर, इतने बड़े शहर में वह कहाँ नौकरी तलाश करे? उसने कई जगह प्रयत्न भी किया, पर किसी को भी काम वाले की जरूरत न थी। धीरे-धीरे उसका रुपया भी समाप्त हो गया। वह पिता की याद करता, रोता और फिर वही। पर वह जाना न चाहता था, बड़े प्रयत्न करने पर उसे लाश ढोने वाली लॉरी पर एक जगह का पता चला। परन्तु वह तो ड्राइवरी जानता नहीं! फिर भी वह लारी वाले के पास गया और काम सीखने लगा।

शहर मे बड़ा भीषण प्लेग फैला, सैंकड़ों आदमी रोज़ मरने लगे। शहर खाली-सा हो गया। लाश की लॉरी वालों को म्युनिस्पैलिटी ने ठीका दे दिया था और ड्राइवरों के गहरे इञ्जेक्शन दे दिये थे। शकर भी दिन भर मे कई बार, कई-कई लाशें गङ्गा के किनारे ले जाता था। अपने सामने उन्हें जलते देखता था।

मरघट से लौटते समय अक्सर उसे कुछ बुरी भावनायें घेर लेतीं—वह सोचने लगता, उसका बूढा बाप भी कहीं मर न जाये ! वह उसे अन्तिम समय देख भी न पाये ! उसने उसे पढा लिखा कर बड़ा किया, बुढापे में दो रोटियों की आशा से, और शकर उसे दे आया है, जीवन भर रोने के लिए, तड़पने के लिए, अपने विछोह का दुख। यहाँ प्लेग फैल रहा है, कहीं वह भी न मर जाय ? सुना है इन्जेक्शन भी कोई लाभ नहीं पहुँचाते। वह नौकरी छोड़ कर अब जल्दी ही घर चला जायेगा। बुढापे में पिता की थोडी-सी ही सेवा करके जीवन के पाप धो ले तो मुक्ति का मार्ग खुल जाए।

वह सोच रहा था, आज मालिक से कहकर हिसाब करके, कल वह गाँव चला जायगा। उसे ज़रूर जाना है, मालिक मना करे तो भी वह नहीं मानेगा।

रास्ते में दो स्वयसेवक फुटपाथ पर पड़े एक व्यक्ति को कफन में लपेट रहे थे। लाश की लॉरी मरघट से लौट रही थी। स्वयसेवकों ने हाथ उठाकर गाड़ी रोकी और उस लाश को अन्दर रख दिया। शकर फिर मरघट की ओर लौट चला।

इस समय न जाने क्यों वह अपने मन में पिता के लिए बहुत बेचैन हो रहा था। रह रहकर वह सोच रहा था, कितनी भीषण बीमारी है ! वह यदि आज ही यहाँ से न चला गया तो अवश्य ही दो एक दिन में वह भी बीमार हो जायेगा। यह अन्तिम लाश जलाकर बस, वह जायेगा ही।

गङ्गा के रेतीले मैदान में जहाँ-तहाँ सैकड़ों मुरदे जल रहे थे। चिताओं की लपटें उठतीं-बुझतीं और फिर धधकने लगतीं। लॉरी के रुकते ही स्वयसेवकों ने लाश उतारी।

शकर सोच रहा था, उसे जल्दी ही जाना है, इसलिये वह अब न रुकेगा, परन्तु न जाने किस प्रेरणा से वह उन स्वयसेवकों के पीछे हो लिया।

हवा के एक हलके से झोंके के आते ही, ज्योंही लाश के चेहरे से कफन हटा, त्योंही शकर को बड़े ज़ोर का चक्कर-सा आया, वह रुक न सका और उन स्वयसेवकों के बीच, चिता के पास पड़ी हुई लाश पर 'हाय, कक्का !' कह, पछाड़ खाकर गिर पड़ा।

दूसरी चितायें तब भी टिमटिमा रही थीं।

माँ की आँखें—

१

'अम्मा ओ, हम गाँव जाय रये !' सात-आठ वर्ष का वालक, अपने कन्धे पर अरहर की एक लकड़ी रखे; लकड़ी के सिरे पर छोटी-सी एक पोटली, पोटली में पहाड़े की एक किताव, कुछ मिट्टी के खिलौने और एक पत्ते में वरफी के दो-तीन टुकड़े, आँगन में खड़ा अपनी माँ से आज्ञा माँग रहा था—गाँव जाने की।

'जाओ न, रोज रोज हम गाँव जाय रये, गाँव जाय रये।' रसोई-घर के खुले दरवाज़े से माँ ने झाँका और गुस्से में भर कर कह दिया।

वालक समझा नहीं उसके गुस्से को। वह अपने नन्हें से मस्तक की रेखाओं में नन्हीं-नन्हीं भावनाओं से उलझ गया था—सब लोग गाँव जाते हैं, इसी तरह कधे पर लाठी रख कर, उसके सिरे पर पोटली बाँध कर। गाँव जाने कैसा होता है लेकिन जब सभी जाते हैं, तो वह भी जायेगा!

और वह चल दिया।

माँ ने समझा, रोज़ की तरह वाहर खेल-कूद कर आ जायेगा और वह रसोई वनाती रही!

छोटा-सा वच्चा दोपहर होने से पहले ही एक खेत के किनारे पहुँच गया, शहर से दूर। वह सोच रहा था, सव गाँव जाते हैं, वह भी जायेगा। इतने दिन हो गए सोचते-सोचते गाँव जाये, गाँव जाये, पर मौक़ा ही नहीं मिलता, और आज तो वह जा ही रहा है। इतने दिन वाद कहीं उसे गाँव जाने का अवसर मिला है!

सूर्य की किरणों की चमक तेज़ होती जाती थी, वच्चे का हृदय छट-

पटाने लगा, गर्मी से, माँ की याद से और गाँव से परिचित न होने की बेचैनी के कारण।

उसे भूख लगी। पोटली खोल कर उसने बरफी खा ली, प्यास लगी तो खेत के सिरे पर बने कुएँ के किनारे पानी से भरे हुए गड्ढे में से पानी पी लिया। और फिर वह एक ओर चल दिया, वैसे ही कंधे पर लकड़ी रख कर। लकड़ी के सिरे पर पोटली बँधी थी, वह गाँव जा रहा था।

सब सुनसान था।

सूर्य की किरणें तेज हो रही थीं।

नासमझ बच्चे की विकलता बढती ही जा रही थी, घर की याद से, गाँव के लिए बेचैनी से..... !!

सफेद लम्बी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी जटायें, गेरुए वस्त्र सारे शरीर को ढँके थे, गौर वर्ण, चेहरे पर अपूर्व तेज था, हाथ में कमंडलु, पैरों में खड़ाऊँ— दूसरी पगडंडी से महात्मा जी निकल कर आये और खेतों से घिरे उस रास्ते पर उन्होंने उस नादान बच्चे को और उसने उन्हें देखा।

महात्मा जी आश्चार्य में थे।

बालक घबराया नहीं, उसने उन्हें लक्ष्य करते हुए पूछा, 'बाबा, तुम गाँव जाय रये हो ?'

'हाँ, हाँ, !' महात्मा जी ने कहा और आश्चर्य से उसे देखते रहे।

'हम तुम्हाए संग चलें ?' बालक ने आशा भरी दृष्टि से देखा।

'तुम कहाँ से आये हो ?'

'घर से।'

'कहाँ है तुम्हारा घर ?'

'बहुत दूर है।'

'घर चलोगे ?'

'घर नहीं, पहले गाँव चलो।'

'कौन से गाँव चलोगे ?'

'जहाँ मथुरिया जात है।'

'गाँव का नाम मालूम है?'

'नहीं, गाँव तो वोई है, जआँ मथुरिया गओ हतो।'

महात्मा जी एकाएक रुक गए, गहरी रेखाएँ उनके मस्तिष्क पर बिखर गईं। उन्होंने बालक के वेश को देखा—खद्दर का कुरता, नीची-नीची धोती, सिर पर किश्तीदार सफेद टोपी।

'तुम्हारे पिता का क्या नाम है?' महात्मा जी ने पूछा, 'जानते हो?'

'हमाई अम्मा हैं बस, बडी अच्छी हैं, उन्नें कह दई—जाओ गाँव। सोई हम चले आए, कित्ती दूर है गाँव बाबा?' बच्चे ने कहा।

बच्चे की प्रखर बुद्धि देख कर महात्मा जी बहुत प्रसन्न हुए, परंतु उन्हें मन में बडा दुःख हुआ, यह देख कर कि एक सम्भ्रात कुल का बालक अपनी माँ को छोड़कर किस तरह भटक गया है। वे क्या करें, उसे कहाँ ले जाएँ? कोई दुश्मनी से यहाँ तक छोड़ गया हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, और वे इस प्रात के बारे में कुछ जानते भी तो नहीं।

'तुम हमारे साथ चलोगे?' महात्मा जी ने अत में पूछा।

'कहाँ, गाँव?'

'हाँ!'

'चलेंगे।'

'तुम थक तो नहीं गए?'

'थक तो गए हैं?' एक बार अपने पैरों की ओर देखा फिर महात्मा जी की ओर अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से बच्चे निहार लिया।

महात्मा जी ने उसे गोद में उठा लिया। देखा, पैरों में बड़े-बड़े छाले पड़ गए हैं।

महात्मा जी की आत्मा उस बालक की स्थिति से परिचित होकर एकबारगी कराह उठी।

बालक उनकी गोदी में आ गया, वैसे ही कधे पर अपनी अरहर

की लकड़ी रखे रहा, लकड़ी में पोटली बँधी रही !

महात्मा जी ने अपनी चादर से बच्चे को ढक लिया।

सूर्य माथे पर चमकने लगा ! धूप जैसे अग्नि का ही रूप धारण किये ले रही थी। हवा, लू बन गई थी।

महात्मा जी सोचते जा रहे थे, यह सुन्दर बालक, पिता-हीन। इसकी माँ, जो इस बच्चे के लिए जी रही है। सोच रही होगी, मेरा लाल अब आता होगा ! भूखी प्यासी बैठी राह देख रही होगी। कहाँ ले जाँय, किस तरह इसे इस की माँ से मिलायें !

२

'हीरू दादा, मुन्नन को घर से गये दो घटे से ज़्यादा हो गए, अभी तक नहीं आया। जाने कहाँ चला गया है। कहता था, गाँव जायें ? मैंने गुस्से में आ कर कह दिया—जा न ! और अब वह जाने कहाँ चला गया इस गरमी में !'

'तुम घर जाओ मुन्नन की माँ, हम मुन्नन को खोने नहीं देंगे।'

'गाँव भर में हीरू दादा, बस तुम्हारा ही सहारा है। मुन्नन मेरे जीवन की आशा है, वह न मिला तो मैं कैसे जी सकूँगी ?'

'तुम रोती हो मुन्नन की माँ ! जाओ घर यों ही खुला पड़ा है। हम अभी चन्दर को लेकर जाते हैं ...।'

'मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी दादा ! घर की अब मुझे चिन्ता नहीं है ! मैं मुन्नन के लिये जी रही हूँ। मुन्नन का ही वह घर है। किसी तरह दुनिया की बुराई-भलाई के बीच, केवल मुन्नन के लिये ही, यह रँड़ापा काट रही हूँ—नहीं तो क्या उनके पीछे अब तक बैठी रहती ? हाय, मेरा लाल जाने कहाँ होगा.... ?'

'रोओ न बहन ! मैं जाता हूँ। मैं तुमसे कहता हूँ—जब तक मुन्नन नहीं मिलेगा, हम वापस नहीं लौटेंगे। जैसा मुन्नन तुम्हारे लिये, वैसा ही हमारे लिये भी है। हम उसे कैसे खो जाने देंगे !

'तुम घर जाओ और ताला लगा कर यहीं चली आना—चन्दर की बहू घर में है। उसी के पास बैठना। हम जाते हैं।'

'लेकिन, अगर मुझे भी साथ ले चलो दादा, तो क्या हो जाये?'

'तुम बहुत नादानी की बातें कर रही हो, मुन्नन की माँ! हम कहते हैं, हम मुन्नन को नहीं खोने देंगे। तुम समझ लो, वह अभी बाहर खेल कूद रहा है बस! दो घण्टे में कहाँ तक पहुँचा होगा! अभी-अभी उसे यहाँ लिये आते हैं.... ।'

'यह लो, तुम फिर रोने लगीं। इतनी चिन्ता न करो, हम जाते हैं, धीरज धरो।'

'दादा, मुन्नन तुम्हारा है, वह खोने न पाये... ..!'

× × ×

मुन्नन की माँ झटपट घर गई। दहलीज के ताख़ में रखा हुआ ताला उठाया और उल्टे पावों बाहर निकली, दरवाज़ा बन्द करके ताला लगाया और रोती हुई हीरू के घर की ओर चली। रास्ते में उसे जो भी कोई मिला, उसी से मुन्नन के बारे में पूछा।

हीरू के घर से दस कदम पहले जग्गन महाराज मिले। मुन्नन की माँ उन्हें देखते ही बोली—'महाराज, मुन्नन सवेरे से कहीं चला गया है, ज़रा फलित देखकर बता दो, खो तो नहीं गया?'

जग्गन महाराज ने लाल-लाल आँखों को फाड़कर कहा—'मैं फलित देखकर बता दूँ? बड़ी आई वहाँ से, जैसे मुझे कोई काम ही नहीं है। मुन्नन है ही शैतान, नदी-नाले में कूद पड़ा होगा. .. ।'

जग्गन महाराज से और अधिक सुनने की उसे आशा न थी, वह सीधी हीरू के यहाँ चली गई। जग्गन ने एक बार घृणा से दुःखिनी विधवा की ओर देखा और अपनी राह बढ गया।

हीरू गाँव का बूढा चौकीदार है, चन्दर उसका बेटा है। घर में हीरू, चन्दर और चन्दर की बहू, यही तीन प्राणी हैं।

सिन्दूर की लाज

हीरू मुन्नन को चन्दर की ही तरह प्यार करता है और गंगा को तो वह अपनी सगी बहिन से भी अधिक मानता है। गाँव भर में गगा के दो ही शुभचिन्तक है, एक हीरू और दूसरा वह लोहार मथुरिया। मुन्नन के पिता की मृत्यु के पहले, गाँव भर के आदमी उसके यहाँ जमा होते थे, ख़ूब खाना पीना होता था। यही जग्गन उसके यहाँ से दस-दस रुपये यों ही ले जाता था। पति के साथ उसके जीवन के केवल दस वर्ष ही तो बीते थे। पति के मरते समय केवल हीरू, चन्दर और मथुरिया, यही तीन आदमी उसके यहाँ थे। इन्हीं को उसने अपनी पत्नी और बच्चे का भार सौंपा था और वे तभी से उन्हें अपने परिवारवालों जैसा ही मानते चले आये हैं। घर का मकान है। कपड़े सीने की एक मशीन भी है उसके पास। उसी के बल पर माँ-बेटे को दो वक़्त खाना मिल जाता है।

गगा चन्दर की बहू के पास बैठी थी। उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी सी लगी थी और स्मृति पटल पर रह-रहकर पिछली बातें आ रही थीं। पिता की उसे याद भी न थी—जब से उसने होश सभाला, घर में अकेला बड़ा भाई था, उसकी किताबों की छोटी-सी दुकान पर घन्टों वह बैठी रहती थी। भाई उसे कितना प्यार करता था। उसी ने उसका ब्याह इस गाँव में किया था, उसका पति कितना भला था। कभी किसी बात की तकलीफ उसे नहीं हुई। ब्याह के एक वर्ष बाद ही पति ने कहा था कि उसका भाई घर-बार छोड़ कर कहीं चला गया है। तब वह कितनी रोई थी। भाई के अलावा, शादी होने से पहले, उसका कोई न था पति के न रहने पर तो संसार उसके लिए और भी अन्धकारमय हो गया था। एक मुन्नन को ही वह अपना सब कुछ समझती आई है। उसे कितने लाड़-प्यार से पाला-पोसा है! और अब अगर कहीं वह न मिला? हाय, अगर मुन्नन न मिला तो क्या होगा? उसके लिए सब कुछ बस मुन्नन ही है। वह उसे खोकर कैसे जीवित रहेगी......?

माँ की आँखें

गगा जोर-जोर से रोने लगी। चन्दर की वहू उसे समझा रही थी, पर वह रोती ही रही। कभी-कभी मुँह से निकल जाता, 'हाय, मेरा मुन्नन!'

रोती रह! तेरे जीवन में रोना ही वदा है गगा! चीख़-चीख़ कर रो ले। एक दिन भाई के लिए सिर पटख-पटख कर रोई थी, एक दिन पति के लिए रो-रोकर गाँव भर को तूने रुला दिया था। आज तुझे मुन्नन के लिए रोना है। रो, अपने कलेजे के टुकड़े के लिए भी रो ले। जी भर कर रो ले। पर गगा! तुझे यही सब दुःख सहने के लिए जीवित रहना है।

लेकिन मुन्नन खो नहीं सकता। हीरू दादा उसे खोने नहीं देंगे। वह ज़रूर उसे ले आयेंगे। कहते थे, मुन्नन को जब तक नहीं लाऊँगा, घर न लौटूँगा।

और अगर मुन्नन न मिला, हीरू दादा घर न आयेंगे। तब उसका क्या होगा? नहीं, वह मुन्नन के बिना जीवित नहीं रह सकेगी!

रोज मुन्नन गाँव जाने की कह कर पन्द्रह-बीस मिनट में आ जाता था। उस के बिना इतनी देर अकेला रह ही नहीं सकता। कहीं जगन महाराज की ही बात ठीक न हो.. ...!

राह देख गगा! तुझे आशा है, तो मुन्नन आयेगा ज़रूर। तू बस, बैठी रह! प्रतीक्षा करती रह!

पर वह कब तक राह देखे? नहीं, वह स्वय जायेगी, मुन्नन बिना उसके खोजे और किसी को न मिलेगा। लेकिन, ओ गगा! थोड़ा रुक शायद हीरू दादा स्वय ही उसे ले आयें।

—और वह विचारों के इसी सघर्ष में उलझ कर दीवार के सहारे लुढक गई। आँखें मीचे-मीचे बड़बड़ाती रही—'हीरू दादा, मुन्नन तुम्हारा है, उसे ले आओ। मैं उसके बिना ज़िंदा नहीं रह सकूँगी।'

बरसों के बराबर लम्बे-लम्बे दस दिन जब बीत गये, तब ग्यारहवें

दिन चदर वापस आया। गगा कठपुली की तरह इन दस दिनों तक रोज़ का काम करती रही! रात को एक पल के लिये भी उसे नींद नहीं आई! उसकी देह जकड़ सी गई। आँखें लाल होकर पथरा-सी गईं।

चंदर को अकेला आते देख वह सब कुछ समझ गई। उसने कुछ पूछा नहीं। उसका मन कराह उठा—जब मुन्नन भी नहीं रहा तो किसके लिए जिए? अच्छा है मर ही जाय। लेकिन फिर तुरन्त ऐसा भान होता जैसे उससे कोई कह रहा हो—'गगा, हीरू दादा उसे लिए बिना न लौटेंगे? वे चंदर की ही तरह मुन्नन को भी मानते हैं......।'

चदर कुछ बोला नहीं, गर्दन झुकाए खड़ा रहा। तब गगा ने कहा—'बैठ जाओ भैया।' उसे कुछ भी जानने की अभिलाषा नहीं थी, जो कुछ चदर कहना चाहता था, उसने वह सब समझ लिया था! हाँ, उसने थोड़ी देर बाद एक बात पूछी—'हीरू दादा नहीं लौटे?'

'वे मुन्नन के बिना न लौटेंगे।'

मुन्नन की माँ को आशा की टिमटिमाती-सी शमा दीख पड़ी और इस आशा-निराशा के सघर्ष में उसने एक साँस खींच कर कहा—'मुन्नन अब कहाँ से मिले भैया! जग्गन महाराज कहते थे, वह कहीं नदी-नाले में डूब गया होगा। हीरू दादा को तुम बुला लो, अब वह नहीं आयेगा!'

'दादा कहते थे, मुन्नन को कोई ले गया है। वे मुन्नन को लायेंगे ज़रूर। तुम रो-रोकर अपने को घुला न डालो, थोड़े दिन में मुन्नन ज़रूर आ जायेगा!'

'क्या पता भैया, आयेगा या नहीं?'

'ज़रूर आयेगा, मैं कहता हूँ!'

'देखूँगी........।'

२

घने पेड़ों के बीच पहाड़ी नाले के किनारे एक कुटी बनी थी, कुटी के चारों ओर फूलों के पेड़ और लौकी की बेलें झूल रही थीं।

माँ की आँखें

सूर्य की किरणें कुटी के ऊपर पड़ रही थीं, चिड़ियों की चीं-चीं का कलरव बड़ा भला लग रहा था !

द्वार के सामने एक बड़ा सा चबूतरा था, उसी पर एक वृद्ध पुरुष बैठे थे, आँखों में चमक थी, चेहरे पर अपूर्व ज्योति अठखेलियाँ कर रही थीं ! आसन के एक कोने पर कई मोटी-मोटी पुस्तकें और दवात रक्खी थीं।

वृद्ध महात्मा एक पुस्तक पढ रहे थे। एकाएक पुस्तक से दृष्टि हटा कर उन्होंने पेड़ों के झुरमुट की ओर देखा और गम्भीर स्वर मे आवाज़ दी—'मुन्नन बेटा !'

कहीं पास ही से धीमी आवाज आई—'आया बाबा !' और दो क्षण पश्चात् ही, हाथ में दो मोटी पुस्तकें और एक छोटा सा आसन ले कर तेरह-चौदह वर्ष का बालक सामने आ खड़ा हुआ।

'आज पढाऊँगा नहीं बेटा ! आज तुमसे कुछ बातें करनी हैं, बैठो !' वृद्ध महात्मा ने उस बालक से बैठने का सकेत किया।

बालक आश्चर्य से उनकी ओर देखता हुआ आसन बिछा कर बैठ गया। तब महात्मा जी ने बालक के कधे पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—'बेटा, आज तुम्हें मेरे पास आये हुए छः वर्ष पूरे हो गए हैं। इस बीच तुम अपनी माँ के लिये सैकड़ों बार रोए हो। आज तक तुम्हें हँसी नहीं आई है, सदा तुम सुस्त बने रहते हो। मैं जानता हूँ, अपनी असहाया जननी को अकेला छोड़ कर जिस तरह तुम अपनी नादानी से गुमराह हुए हो, यह तुम्हारे लिए वास्तव में दुःख और सकोच की बात है, लेकिन तुम जानते हो मैंने ग़लती नहीं की। यदि अपनी माँ से बिछुड़ने का दोषारोपण तुम मुझे ही देते हो तो, यह तुम्हारी भूल है।'

बालक बैठा-बैठा सुन रहा था, उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

महात्मा जी कहते गये—'मुन्नन बेटा, तुम्हारा रोना देखकर मुझे दुख जरूर होता है, परन्तु आश्चर्य नहीं। मैं स्वय ही तुम्हें दुखी देख

कर रो पड़ता हूँ और इसे अपनी कमज़ोरी समझता हूँ कि माँ से तुम्हें न मिला सका। अगर तुमको अपने गाँव का ही पता ज्ञात होता तो मैं अवश्य तुम्हें घर पहुँचा देता। फिर भी आज तक मैं निराश नहीं हुआ हूँ। मेरे कोई साथी-संगी होता तो तुम्हें घर पहुँचाने में सहायता मिलती। तुम देखते हो कि मैं एकाकी हूँ। तुमने अपनी प्रखर बुद्धि से सस्कृत और देवनागरी का जितना अध्ययन कर लिया है, इतना बहुत कम विद्वान्, इतनी आयु में, कर सके हैं। तुम्हें मैं अब काफी समझदार समझता हूँ।'

मुन्नन बराबर रो रहा था। महात्मा जी की इतनी बात समाप्त होने पर वह बोला—'अब न कहो बाबा! मुझे अपनी माँ की याद आती है......।' और वह जोर से रो पड़ा।

'मैं जानता हूँ बेटा! यह स्वाभाविक है। फिर भी मैं चाहता हूँ कि तुम रोओ मत! मैंने कल यहाँ से बाहर चल कर घूमने का निश्चय किया है! और इसका एकमात्र कारण तुम हो। मुझे विश्वास है कि इस यात्रा में, मैं तुम्हें, तुम्हारी माँ से मिला दूँगा।'

'बाबा! .....सच कहते हो बाबा, तुम्हें विश्वास है, मेरी माँ मुझे फिर मिलेगी?' महात्मा जी की ओर आँसू भरी आँखों में आशा और आश्चर्य भर कर मुन्नन देखता रहा!

'ज़रूर, मुन्नन बेटा! अगर तुम्हारी माँ जीवित है तो मैं जरूर मिलाऊँगा!'

पूरी बात सुन कर निराशा से मुन्नन ने कहा—'तो क्या बाबा! तुम्हें सदेह है कि मेरी माँ जीवित न होगी?'

'नहीं बेटा, तेरी माँ ज़रूर जीवित होगी! वह तुझे देखने के लिये व्याकुल होकर तेरी राह देख रही होगी।'

'मेरी माँ बाबा! मेरी माँ .....!'

'इतने बेचैन न हो मुन्नन! रोने से कुछ लाभ नहीं होता, यह तुम

जानते हो। हाँ, तुमसे एक बात पूछता हूँ, क्या तुम अब भी अपनी माँ को पहिचान सकोगे . ?'

'बाबा! यह आप क्या कह रहे हैं—मैं माँ को नहीं पहचान पाऊँगा? मैंने कभी बाप को नहीं देखा। माँ को देखा है, बस उसी को इस ससार में मैं जानता हूँ, फिर क्यों न पहचान पाऊँगा?'

'मैंने सौ मील के अन्दर के गाँवों के नाम लिख लिए हैं, उन्हीं में एक-एक कर के हम चलेंगे। सब गाँवों में तुम्हें घुमाऊँगा।'

'आपको विश्वास है बाबा, माँ अवश्य मिलेगी?'

'हाँ बेटा! धीरज धरो। अच्छा, अब तुम बस्ती में जाकर अपने लिए कुछ खाने-पीने का प्रबध कर आओ।'

'भिक्षा-पात्र ले लूँ?'

'नहीं मै पैसे दूँगा।' यह कह कर महात्मा जी कुटी के अन्दर गये और वहाँ से आकर मुन्नन को कुछ पैसे दिये। मुन्नन कुटी के पीछे की पगडडी से बस्ती की ओर जाने लगा।'

महात्मा जी वहीं आसन पर बैठकर कुछ सोचने लगे।

थोड़ी देर बाद सामने से कोई व्यक्ति उन्हें आता हुआ दिखाई पडा। वे खड़े हो गये। कोई साधू था—फटे कपड़े, कृश तन, बढी हुई दाढी पर गर्दा जम गया था।

बूढ़े नवागन्तुक ने महात्मा जी के चरण छुए। महात्मा जी ने बड़े आदर से पास बैठा कर उससे पूछा—'कैसे कष्ट किया भाई?'

इस प्रेम-भरे वाक्य ने नवागन्तुक के मन में महात्मा जी के लिए और भी आदर उत्पन्न कर दिया। वह बोला—'इस गाँव में कल ही आया हूँ। आपकी प्रशंसा बहुत सुनी सो दर्शन को चला आया।'

'बड़ा अच्छा किया भाई! यहाँ तो कभी कोई इतना कष्ट नहीं करता कि मेरे सुख-दुख से पसीज कर यहाँ आए और एक बूँद पानी की भी पूछ ले।'

'मैंने सुना है, आप ज्योतिष भी जानते हैं। मैं छै वर्ष से जिसके लिए भटक रहा हूँ आज उसे आप बता दीजिए महात्मा जी! नहीं तो मै मर जाऊँगा, मेरी बहिन मर जाएगी ....।'

'छः वर्ष से ? मैं मर जाऊँगा, मेरी बहिन मर जायेगी ?' यह क्या कह रहा है ? छः वर्ष महात्मा जी के मस्तक की उभरी हुई रेखाओं में नाचने लगे। तब उन्होंने कह दिया—'मैं आपकी सहायता करने को तैयार हूँ। आप जो कुछ भी पूछना चाहें पूछें.. . ।'

'यहाँ से दूर, एक गाँव में रहता हूँ। एक दुःखिनी विधवा है, उसे मै अपनी सगी बहिन से भी अधिक मानता हूँ। छै वर्ष हुए उसका छोटा सा बच्चा कहीं खो गया था. ।'

'छः वर्ष हुए, छोटा-सा बच्चा खो गया था ?' महात्माजी आश्चर्य से सब सुन रहे थे।

'मैंने उसकी माँ को वचन दिया था कि बिना मुन्नन को......।'

'मुन्नन......?' महात्मा जी चीख पड़े!

'जी, उसका नाम मुन्नन था! मैंने उसकी मा से कहा था कि बिना मुन्नन को साथ लिए वापस न लौटूँगा। आज मैं उसी मुन्नन के लिए छै वर्ष से भटक रहा हूँ ....।'

'तुम उसे पहचान लोगे ?' ख़ुशी के आँसुओं से भरी महात्मा जी की आँखें आकाश की ओर उठ गई।

'पहचान नहीं लूँगा ? जिसके लिए दुनिया छान ली, जो हमेशा मेरी आँखों में नाचता रहा, उसे पहचान भी न पाऊँगा यह कैसे सभव है ?'

'तब तुम बैठो। तुम्हारा मुन्नन यही है।' महात्मा जी ने गद्‌गद् होकर कहा। आज बैठे-बैठे अकस्मात् भगवान ने उनकी प्रार्थना सुन ली थी।

'मुन्नन यहीं है बाबा जी ? मेरा मुन्नन आपके पास ही ? कहाँ है, कैसे है, आपने कब पाया, कहाँ पाया ?' हीरू दादा आश्चर्य-सागर में

डूबते-उतराते एक साथ इतने प्रश्न कर बैठे।

तभी पीछे से मुन्नन आ निकला! हीरू दादा की उधर पीठ थी।

महात्मा जी ने हीरू से कहा—'लो तुम्हारा मुन्नन आ गया! यही है न?'

हीरू दादा उठ खड़े हुए! आश्चर्य से उन्होंने मुन्नन को और मुन्नन ने उन्हें देखा। दो क्षण तक आँखों ने आँखों में ही एक दूसरे को पहचाना और तब दोनों के मुँह से एक चीख़ निकली!

'मामा !'

'मुन्नन बेटा!'

हीरू दादा मुन्नन को गले लगाए प्रेम के आँसू बहाने लगे! मुन्नन भी हिचकियाँ भर रहा था। महात्मा जी की भी आँखें आँसुओं के वेग को रोक न सकीं।

उसी दिन हीरू दादा, मुन्नन और महात्मा जी के साथ गाँव की ओर रवाना हो गये!

४

'कुछ फ़ायदा नहीं है बेटा।' गगा ने चदर से कहा।

'तुमने रो रोकर अपनी आँखे फोड़ लीं बुआ! मुझे नहीं देखतीं, अपने मुन्नन की आशा में, बाबा की ग़ैरहाजिरी का, मैंने कभी रज नहीं किया?'

'मुन्नन? अब मुन्नन की आशा बेकार है बेटा! अगर हीरू दादा वापस आये तो मुन्नन को कभी नहीं ला सकेंगे। जाने कितने बरस हो गये उसे गये हुए। मैं ही अभी तक जीवित हूँ। उस दिन कुए में कूद पड़ी थी, तब भी भगवान ने तुम्हें भेज कर बचा लिया और अब जाने कब मरूँ! मेरा मुन्नन था कभी, पर अब . !'

'अब भी है गगा बहिन।' बाहर से तीन व्यक्ति, दीपक के क्षीण प्रकाश में, चदर ने आते हुए देखे। गगा ने केवल पदचाप सुनी और

हीरू दादा के शब्द।

गगा उठ कर बैठ गई। यह सब उसे सपना-सा लग रहा था। चदर को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। यह दो दाढ़ी वाले कौन हैं?

मुन्नन भागता हुआ कोठरी में घुस गया। 'अम्मा-अम्मा।' कह कर वह खाट पर बैठी माँ की गोद में आकर रोने लगा। गगा ने उसे दोनों हाथों से पकड़ कर कस लिया। दोनों के आँसू बहने लगे। मुन्नन की आँखे अपने माँ के आँसू देख रही थीं, पर गगा की आँखें मुन्नन को नहीं देख सकीं......!

'गगा बहिन! तुम्हारा मुन्नन आ गया है। मैंने कहा था, वह आयेगा ज़रूर, मैं उसे खोने नहीं दूँगा।'

'कहाँ हो हीरू दादा! मेरे पास आओ! मैं तुम्हारे इस अहसान को कभी न भूलूँगी! आओ, मेरे पास खाट पर बैठो।'

'मैं यहीं तो खड़ा हूँ गगा बहिन! देखो न!'

'पर हीरू दादा अब मैं कैसे देखूँ? मेरी आँखे तो... . ! मेरे मुन्नन मैं तुम्हें......।'

'आँखें? गगा बहिन! तुम्हारी आँखें...?' हीरू दादा के आँसू बह चले?

गगा बहिन? गगा बहिन? महात्मा जी सोच रहे थे! उनकी भी एक बहिन थी! हीरू दादा ने बताया था, इस गाँव का नाम अहेरीपुर है। यहीं तो मेरी गंगा का ब्याह हुआ था! अरे! यह तो बिल्कुल मेरी गंगा ही है! यह मेरी गगा है! यही तो......।

'गगा! ओ, गंगा! तुझे क्या हो गया? मुन्नन के साथ मैं भी आया हूँ! मुझे देख गगा! मैं यहाँ हूँ! मैं केशव हूँ। तेरा केशव.. ..।'

महात्मा जी ने गगा को उठाकर गले से लगा लिया। गगा बोली—'केशव भैया? तुम भी आये हो मुन्नन के साथ आह, लेकिन भैया! अब मैं तुम्हें नहीं देख पाऊँगी। तुम्हीं मुझे देखो! अरे, रो रहे हो तुम सब?

मुन्नन, केशव भैया, हीरू दादा, चन्दर तुम सब रो रहे हो ? मैं भी रो रही हूँ ! पर अब मैं तुम्हें देखूँ कैसे भैया ?"

द्वार के पीछे खड़ी चन्दर की बहू ने आँसुओं से भीगे, अपनी धोती के पल्ले को देखा और दिए की बाती आगे बढा दी।

तीन चित्र—

बात इतनी पुरानी हो गई है कि सही-सही घटनाओं का उल्लेख इतिहास में भी नहीं मिलता, लेकिन एक किम्बदन्ती के आधार पर ही उस घटना के चित्र की रूपरेखा बनानी पडती है। यों तो इतिहास में पुरानी-से-पुरानी घटनाओं का वर्णन है, लेकिन कुछ बातें ऐसी भी होती हैं, जो सर्व साधारण में प्रचलित होते हुए भी, कभी-कभी इतिहासज्ञों की दृष्टि से ओझल हो जाती हैं। यही कारण है कि इस राज्य और राजा का नाम, स्थान और काल सभी कुछ आज भूतकाल के गर्भ में इस तरह विलीन हो चुके हैं कि उनका ठीक या ग़लत पता किसी को भी नहीं है।

प्रचलित कहानियों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि वह राज्य मध्यभारत में कहीं रहा होगा और आर्यों के भारत में आने के आस-पास ही उसका समय होगा। कुछ लोगों का अनुमान है कि उस समय वहाँ गौड़वश का राज्य था। खैर, हमें इन बातों से कुछ ख़ास मतलब नहीं है, लेकिन फिर भी मुख्य कहानी से इसका कुछ सम्बन्ध कहा जाता है, इसीलिए इतना कहा।

एक बात और कहनी है—ससार प्रसिद्ध धुवाँधार जल-प्रपात से इस कहानी का थोड़ा-सा सम्बन्ध है, इसलिए इतना कह देना चाहिये कि आज जहाँ जबलपुर बसा हुआ है, उसी के नज़दीक कहीं यह राज्य रहा होगा।

× × ×

राजा इतना अधिक दयालु था, कि जन-साधारण अपने और उसके बीच में कोई अन्तर न समझते थे। कभी-कभी लोगों ने देखा था कि वह उन लोगों के बीच में उन्हीं जैसे वेश में उपस्थित है। वह भले

लोगों के बीच में भी कभी-कभी पहचाना जाता था और चोर-डाकुओं के साथ भी देखा गया था। उसकी न्याय प्रियता, कार्य प्रणाली और जनता के प्रति उसके प्रेम ने यह साबित कर दिया था कि वह जनता और देश के हितों की रक्षा करने में समर्थ है और अन्य राजाओं के लिए एक उदाहरण है। यही कारण था कि उसकी प्रजा राजा और राज्य की शुभचिन्तक थी और राजा के प्रति उसमे असीम आदर था।

राजा ने गरीबों के दुख दूर किये थे, उन्हें हर प्रकार की सुविधाएँ दी थीं। राजा न्याय करने में तो बहुत प्रसिद्ध था ही, साथ ही, उसने अपने राज्य के चोर-लुटेरे और हत्यारों को छाँट २ कर दंड दिया था। उसकी प्रजा में अमन और चैन था, उसके राज्य में सुख और शान्ति थी।

× × ×

हम यहाँ जिस दिन की बात कह रहे हैं, उस दिन आसमान पर काले काले बादल झूम रहे थे। साँझ बीत रही थी और पेड़ो की छाया में अँधेरा गहरा होकर ऊँघ रहा था। हवा के ठडे झोंके फूलों की सुगन्ध को दिशाओं में बिखेर रहे थे।

राजा अपना घोड़ा बढ़ाये जा रहा था, लेकिन गाँव के छोर पर वह कुछ ठिठका। उसने देखा, सामने के कच्चे मकान के आगे छप्पर छाया हुआ है। वहीं दीपक की रोशनी में अपना करघा लिये एक युवक जुलाहा अपने काम में व्यस्त है। एक ओर चौकी पर पानी से भरा लोटा रखा हुआ है। छप्पर के एक कोने में एक पिजरा टगा है, उसमें बैठा हुआ तोता कभी-कभी फुदक उठता है और करघे की आवाज़ के साथ स्वयं भी कुछ कहने लगता है, तब जुलाहा प्यार भरे धीमे स्वर में उससे पूछता है— 'क्या है पटे ?' और तोता दूने उत्साह से बोलने लगता है। कोने वाले जिस लट्ठे पर छप्पर का बोझ है, वहाँ दो बकरियाँ बँधी हैं और पास ही एक छोटा कुत्ता बैठा हुआ है।

राजा के घोड़े की टापों की आवाज़ सुनकर जुलाहे ने अपना काम

बन्द कर दिया। सड़क की ओर देख कर कुत्ता भूकने लगा। जुलाहे ने छप्पर से निकल कर देखा कि घोड़े पर एक किसान बैठा है और कुत्ता उसे देखकर भूक रहा है।

जुलाहे ने कहा—'टीपू, ये तो मेहमान हैं, फिर क्यों चिल्ला रहा है?'

कुत्ता चुप हुआ तो जुलाहे ने किसान वेशधारी राजा से कहा—'इस रात में, गाँव छोड़ कर, कहाँ जा रहे हो, परदेसी!'

राजा ने कहा—'दूर जाना है भैया!'

जुलाहे ने हँसकर कहा—'तुम भी ख़ूब हो भैया! देखते नहीं, आसमान मे घटाटोप अँधियारा छाया हुआ है। शायद पानी भी बरसने लगे और तुम ऐसी भयानक रात में सफर करोगे? नहीं भैया, यह तो न होगा। आज तो तुम्हें यहीं रहना पड़ेगा।'

मुसकराते हुए राजा बोला—'नहीं भाई! आज नहीं, फिर किसी दिन आऊँगा, तब ठहर जाऊँगा। जल्दी है, तभी तो ऐसी रात में चल पड़ा, वरना क्या मैं नहीं जानता कि ऐसी रात में सफर न करना चाहिये। मेरा घोड़ा बढ़िया है, तकलीफ नहीं होगी।'

जुलाहे ने कहा—'अच्छा, जैसी तुम्हारी मरज़ी। लेकिन एक बात मान लो—'

राजा ने पूछा—'क्या बात?'

जुलाहा बोला—'पानी पीते जाओ।'

हँसते हुए राजा घोड़े से उतर पड़ा, कहा—'अच्छी बात है। पानी पी लूँगा।'

जुलाहे के साथ राजा छप्पर में आ गया।

जुलाहे ने चौकी से लोटा उठाकर अलग रख दिया और अँगोछे से चौकी को साफ कर के कहा—'बैठो!'

चौकी पर बैठ कर राजा बोला—'वैसे गाँव छोड़ने से पहले मैं खा-

पीकर चला था, लेकिन तुम्हारा कहा न टालूँगा।'

जुलाहा बोला—'अरे भाई, जाने कितनी देर में ठिकाने पर पहुँचोगे; कहीं रास्ते में प्यास लगी और पानी न मिला, इसलिए थोड़ा सहारा तो हो जाएगा।' फिर वह कोठरी के अन्दर चला गया और एक कटोरी में गुड़ और एक गिलास में पानी लेकर राजा के सामने आ उपस्थित हुआ।

राजा ने गुड़ खाकर पानी पी लिया और आतिथ्य सत्कार के लिए धन्यवाद देकर पूछा—'क्या बुन रहे थे?'

जुलाहे ने कहा—कुछ नहीं, पटवारी के लड़की हुई है, सो उसके सलूके के लिए कपड़ा बुन रहा था।'

राजा झोपड़ी से बाहर आया और घोड़े पर सवार हो कर कहा—'राम-राम भैया।'

जुलाहा बोला—'राम-राम।' और तब घोडा एक ओर जाकर अन्धकार में अदृश्य हो गया।

पन्द्रह वर्ष समय की ओट में विलीन हो गये। ससार में अनेक परिवर्तन हुए। राजा युवक से अधेड़ हो गया। एक दिन, मुसाफ़िर के वेश मे, वह फिर उस गाँव मे गया और उसी जुलाहे के द्वार पर घोड़ा रोका। जुलाहा उस दिन भी कुछ बुन रहा था। घुड़सवार को देख कर बोला—'आओ परदेसी, तनिक सुस्ता लो, जाने कहाँ से थके-माँदे आ रहे हो।'

राजा घोड़े पर बैठे बैठे बोला—'माफ करो भाई। आज जल्दी मे हूँ, और किसी दिन देखा जाएगा। दूर जाना है। सुबह पहुँचना होगा और सुबह तक का ही रास्ता है।'

'अच्छा, पानी पी लो!' कहकर जुलाहा बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये अन्दर चला गया और एक कटोरे में गुड़ और एक गिलास में पानी लेकर हाजिर हुआ। राजा घोड़े से उतरा और गुड़ खाकर पानी पी लिया। फिर पूछा—'क्या बुन रहे थे भाई?'

जुलाहे ने प्रसन्नता से कहा—'हमारे पटवारी की लड़की का ब्याह है, सो उसके लिए, लहँगा चूनरी, सभी कपड़े बनाने हैं।'

राजा घोड़े पर सवार होकर बोला—'अच्छा भाई, राम-राम।'

'राम-राम' कहकर जुलाहा फिर अपने काम में लग गया। घोड़े की टापों की आवाज़ आना बन्द हो गयी थी।

युग के अन्धेरे में दस वर्ष और खिसक गये। बहुतों ने जन्म लिया, बच्चे जवान हुए, जवान बूढे हो गये और बूढ़े दुनिया से कूच कर गये।

और उस दिन बूढा राजा फिर उसी गाँव में पहुँचा। जब साँझ बीत गई, तब उसका घोड़ा जुलाहे की झोपड़ी के द्वार पर था। जुलाहा अपना काम आज बहुत शीघ्रता से कर रहा था। वह बिलकुल बूढा हो गया था। उसकी दाढी और सिर के बाल सन जैसे सफेद हो गये थे। दीपक के धुँधले प्रकाश में उसके झुर्रीदार चेहरे पर बिखरे हुए आँसू दाढ़ी के बालों पर बह रहे थे।

राह की ओर एक बार उसने थकी आँखों से देखा और क्षीण स्वर में कहा—'परदेसी.....!' और आगे उससे कुछ भी न कहा गया।

राजा ने कहा—'रो क्यों रहे हो भाई?'

जुलाहे ने कुछ उत्तर न दिया तो राजा फिर बोला—'क्या बात है भाई! आज क्या बुन रहे हो?'

भर्राये हुए कण्ठ से जुलाहे ने उत्तर दिया—'पटवारी की लड़की का कफन है।'

राजा कुछ न बोला। दो बूँद आँसू उसकी आँखों से निकल कर वहीं सड़क की धूल में बिखर गये। जुलाहा चुप था। राजा का घोड़ा आगे बढ गया था।

शहर की नौकरी—

पगडंडी की सफेद, टेढ़ी-मेढ़ी लकीर दूर तक दिखाई दे रही थी, फिर घास की हरियाली के बीच छिपकर, आम के बाग़ में हो, दूसरी ओर जाकर अदृश्य हो जाती थी। तीन-चार दिन लगातार वर्षा होती रही है और आज कहीं बादल सफ़ेद हुए हैं, लेकिन सूर्य बादलों के बाहर नहीं है और मौसम बड़ा सुहावना मालूम हो रहा है। जगह-जगह पानी से भरे गड्ढे हैं, जिनके किनारे की घास में नयी जान आ गयी है। कहीं-कहीं, दूर आम के पेड़ों के झुण्ड और नीम की घनी डालियों का एक-आध पेड़ हवा के झोंकों में सिहर-सिहर उठता है। लू के थपेड़ों से पीले हुए कच्चे आमों में रस आ गया है और मुरझायी-सी जामुन बहार पा गयी है।

बिहारी और कुन्दन गाँव से चार-पाँच मील चले आये हैं; शहर अभी दो मील के क़रीब होगा। पक्की सड़क भी एक मील दूर है। घर से चले हुए दो घण्टे हो गये हैं, लेकिन दोनों की चाल में कोई अन्तर नहीं आया, वे उसी गति से आगे बढ़ते जा रहे हैं, जिस गति से घर से निकलने पर एक फर्लाङ्ग चले थे। घर से नमक-मिर्च के साथ मक्के की एक-एक रोटी खाकर चले थे। गाय पहले ही बिक चुकी थी, सो दूध न जाने कब से नसीब नहीं हुआ था। गोकुल की भैंस के जब पड़िया हुई थी, तब ज़रूर सेर भर दूध घर में आ गया था। बस, उसके बाद दूध तो दूध, मट्ठे के भी दर्शन दुर्लभ हो गये। पारसाल बिहारी ने लच्छो का ब्याह किया था, तभी गाय बेच दी थी। महाजन के भी बाईस रुपये उधार हो गये थे और कुन्दन ने पचीस रुपये दिये थे। कुन्दन का तो एक तरह से चुक गया था—पत्नी की झागलें उसे ज़बर्दस्ती दे दी थीं। अब

कुन्दन उसे शहर के एक कारखाने में नौकरी दिलाने के लिए ले जा रहा था। आखिर, गाँव मे जो इतने लोग अपने बनते थे, उन्होंने कभी बात पूछी ? काम आया ता कुन्दन ही।

सामने जामुन के दो पेड़ लहलहा रहे थे। जामुनें काली हो गयी थी। कुन्दन बोला—'आओ, थोड़ी जामुन खा लें।'

कुन्दन लाठी ज़मीन पर रखकर झटपट पेड़ पर चढ गया। बिहारी भी दूसरे पेड़ पर चढा। दोनों एक-एक डालपर पहुँच गये और पकी-पकी जामुनें तोड़-तोड़ कर खाने लगे।

कुन्दन ने गुठली थूककर कहा—'अपना भी एक बाग़ होता बिहारी ! तो बम्बई-आम का पेड़ ज़रूर लगाता, जामुन तो तब छूता भी नहीं।'

बिहारी ने धीरे से एक लम्बी साँस लेकर कहा—'ये बातें तो सपनों में भी नहीं आतीं। तब झूठमूठ सोचने से ही क्या !'

डाल पर पैर लटका, एक हाथ माथे पर मारकर कुन्दन ने कहा—'सब तकदीर का खोट है भैया !'

× × ×

नदी पार करने पर शहर की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ दिखाई दीं। सदर अस्पताल की ओर इशारा करके कुन्दन बोला—'यह दवाख़ाना है बिहारी !'

बिहारी ने कहा—'पहले शहर आया था तो देखा था। बशी का लड़का एक ही दिन रहा, दूसरे दिन मर गया। ये सब तो अमीरों के मतलब की चीजें हैं कुन्दन !'

थोड़ी दूर आगे बढने पर कुन्दन ने सिनेमा-भवन के सामने खड़े होकर कहा—'यहाँ बाइस्कोप की कम्पनी है। कभी आये हो ? अब तो सब तस्वीरें बोलती हैं।'

बिहारी बोला—'हाँ, मालूम है, पर बाइस्कोप में जाना ठीक नहीं। ऐसी-ऐसी भली लड़कियाँ पराये मर्दों के साथ काम करती हैं, जिन्हे

देखते ही मैं तो आँखें बन्द कर लूँ। सब गुंडपना है।'

'तुमने देखा नहीं बाइस्कोप?'

'एक बार देखा था गोकुल के साथ, पर तब तस्वीरें बोलती नही थीं, अब ता आवाज़ भी आने लगी है।'

'सब गोरों की करामात है।'

कुछ देर बाद बिहारी ने कहा—'तुम मगल के यहाँ जाओ तो मैं ज़रा बैकुण्ठ के घर हो आऊँ। मेरी जान-पहचान का है, आजकल बीमार है सो देख ही लूँ।'

कुन्दन ने कहा—'हाँ, ठीक है। मगल से मिल कर मैं तुम्हारी नौकरी के बारे म बात कर लूँगा और उधर तुम बैकुण्ठ के पास हो लेना। फिर कोई बारह बजे कारख़ाने पर आ जाना। हम दानों वहीं बाहर मिलेंगे।' 'अच्छा।' कहकर बिहारी एक ओर मुड गया।

× × ×

बैकुण्ठ के घर जाने के लिए जिस सराय होकर रास्ता था, जब बिहारी ने उसमें क़दम रक्खा, तब देखा कि कई कोठरियों के सामने भोंडी-सूरत की औरते शृगार किए बैठी हैं। उनके चेहरों का तेज क्षीण हो गया था और शुष्कता के ऊपर काले-काले दाग और रेखाएँ उनके कलक का परिचय दे रही थीं। जब सराय का अन्तिम द्वार पार करने लगा तो एक स्त्री बिहारी से बोली—'एक रुपये का ख़र्च है, आना हो तो आ जाओ।'

बिहारी की कल्पना से परे की बात उस स्त्री ने कही। बिहारी अवाक् रह गया और उसका अन्तर एकबारगी काँप उठा। वह शीघ्रता से द्वार के बाहर निकल गया। पीछे उसने उस स्त्री की रूखी हँसी की ध्वनि सुनी।

सड़क पर आकर उसने देखा कि एक ऊँचा-सा इक्का तेजी से चला जा रहा था। उस पर जो व्यक्ति बैठे थे, वे मस्ती भरे स्वर मे कोई गदा-सा गीत गाते जा रहे थे। उधर से बिहारी ने दृष्टि फेरी तो देखा कि एक

दूकान पर गाँव की एक स्त्री बैठी, दूकानदार से हँस हँसकर बातें कर रही थी। उसे ख़याल आया लच्छो की माँ का! वह भी सुन्दरी युवती है, उमर तो अट्ठाइस की है, पर न जाने क्यों अभी वह बाइस-तेइस की ही लगती है। जब वह शहर में नौकर हो जाएगा तो उसे भी लाना पड़ेगा, गाँव में निराधार उसे नहीं छोड़ सकता।

सामने पान वाले की दूकान पर एक औरत खड़ी थी, कपड़े उसके साफ नहीं थे, लेकिन आँखों में सुरमा लगा था और मुँह पानों से भरा था। उधर एक उड़ती नजर डाल, बिहारी बैकुण्ठ के मकान की ओर बढ़ा।

कुशल-क्षेम के बाद बैकुण्ठ ने उसे बताया कि कोई एक मास हुआ उसकी पत्नी एक नाई के साथ भाग गई है। बैकुण्ठ ने अपनी पत्नी को जी भरकर गालियाँ सुनायीं और ज़ोर से इतना चीख़ा कि थककर लेट रहा और हाँफने लगा।

फिर कहा—'तो बिहारी भइया, मैं तुम्हें शहर में नौकरी करने की राय कभी न दूँगा। तुम गाँव लौट जाओ, वहाँ चाहे चार आने रोज़ में ज़मींदार के खेत पर काम कर लो, पर शहर में लच्छो की माँ को ले कर रहो और वह भी केवल बारह रुपये महीने की नौकरी के कारण, यह मुझे तो पसन्द नहीं। औरत को गुमराह करने वालों की कमी शहर में नहीं है। अच्छे-से-अच्छे चरित्र की औरतें भी भटक जाती हैं। नहीं तो बदनाम करने वाले बहुत इकट्ठे हो जाते हैं।

बिहारी मोढ़े से उठ कर खड़ा हो गया और कहा—'मैं गाँव जा रहा हूँ, नौकरी नहीं करूँगा और शहर की नौकरी? राम-राम! मुझसे यह सब देखा-सुना न जाएगा। बारह रुपये की नौकरी के पीछे इतना बड़ा बलिदान मुझसे न होगा।' फिर बिहारी मकान से बाहर हो गया।

बैकुण्ठ ने आवाज़ दी—'सुनो बिहारी, एक बात और सुन लो।'

पर बिहारी जा चुका था।

पड़ाव—

साँझ तब रात जैसी अँधेरी हो गई थी, जब आकाश बादलों की चादर से घिर गया था और मूसलाधार पानी बरसने लगा था।

जब पीपल के पेड से छनकर पानी नीचे आने लगा, तब भीग जाने के भय से, मैं उस ओर छाई हुई, टीन में जाने की सोचने लगा। पानी तेज़ी से बरस रहा था और हवा सर्द थी, इसलिए भीगते हुए, सड़क पार करके उस टीनवाले छप्पर में जाने की बात एक बार पीछे रह गई थी, लेकिन वहाँ पीपल के पत्तों से भी पानी की धाराएँ छन रही थीं।

और पीपल के नीचे से भागकर मैं टीन के नीचे जाकर कूद पड़ा। वहाँ कीचड़ थी, पोली मिट्टी में पूरे जूते तक पैर धँस गये।

सामने देखा तो दो युवतियाँ पानी से बचने के लिए दुबककर खड़ी थीं। एक के चेहरे पर घूँघट था और दूसरी मुँह खोले खड़ी थी। दूसरी सभवतः अविवाहिता थी। उसने मिट्टी में मेरे धँसे हुए पैर देखकर व्यग्य और सहानुभूति के भाव से मुझे देखा।

मैंने कहा—'माफ कीजिएगा। मुझे पता न था कि आप लोग यहाँ होंगी, वरना वहीं पीपल के नीचे भीगता रहता।'

खुले मुँहवाली युवती ने घूँघटवाली की ओर देखा।

'अगर आप कहें तो मैं चला जाऊँ!'

'नहीं, आप खड़े रहिए; यह कुछ हमारी जमीन तो है नहीं। हम भी आप ही की तरह राहगीर हैं।'

'नहीं, यह बात मैं नहीं कहता। मैं सोचता हूँ, आप औरतें हैं, मैं मर्द हूँ। अकेले कोई इस तरह देखेगा, तो जाने क्या सोचेगा। इसी से कहता हूँ कि आप कहें तो चला जाऊँ।'

'आप खड़े रहिए। राहगीरों पर कोई क्या सन्देह करेगा।'

'आप लोग कहाँ जा रही हैं?'

'स्टेशन।'

'स्टेशन तो मैं भी जा रहा हूँ, पर वहाँ से आप कहाँ जायँगी?'

एक गहरी साँस लेकर उसने कहा— 'अभी तो लखनऊ जाना है, वहाँ से भाग्य जहाँ ले जायगा।'

उसके दुख-दर्द का अनुभव करके मैंने कहा—'मैं भी लखनऊ जा रहा हूँ।'

घूँघटवाली ने उस लड़की का हाथ दबाया तो वह बोली—'हमारे लिए थोड़ा कष्ट कर सकेंगे?'

मैंने कहा—'ख़ुशी से, आप कहें।'

उस लड़की ने घूँघटवाली की ओर इशारा करके कहा—'ये मेरी भाभी हैं। महीना भर हुआ, मेरे भैया इस गाँव में अध्यापक होकर आये थे। उन्हें यहाँ आते ही हैज़ा हो गया। फिर वे दो दिन भी न बच सके।'

लड़की की आँखें भरी हुई थीं। घूँघटवाली युवती दीवार का सहारा लेकर खड़ी थी। टीन के ऊपर ज़ोर-ज़ोर से पानी गिर रहा था।

लड़की कह रही थी—'भाई के अतिरिक्त इस संसार में हमारा कोई भी नहीं है; नाम लेने को भी कोई नहीं रहा।'

और वह लड़की सिसकियाँ भरकर रोने लगी।

सान्त्वना के कुछ चुने हुए शब्द कहकर मैंने पूछा—'लेकिन लखनऊ किसके पास जा रही हो और मैं तुम्हारी क्या सहायता करूँ, बताओ?'

उसने बग़ल में दबा हुआ छोटा-सा बक्स खोला और एक किताब निकाली। किताब के अन्दर से एक लिफाफा निकाल कर मुझे दिया, कहा—'भैया का तबादला होने से पहले यह चिट्ठी आई थी। भैया इन-की बड़ी तारीफ करते थे। ये भी उन्हें बहुत मानते थे, चिट्ठी में भी ऐसा ही लगता है।'

लिफ़ाफ़ा हाथ में लेकर आश्चर्य से मैंने अपनी हस्तलिपि में, अपने मित्र का पता देखा, फिर पत्र खोला। वह भी मेरा ही लिखा हुआ था।

मेरी हालत अस्तव्यस्त थी—जिसे वह पत्र लिखा था, वह दुनिया में नहीं रहा और उस पत्र के आधार पर दो स्त्रियाँ मुझसे सहायता चाहती थीं। कैसी विडम्बना थी?'

'आप इनके घर पहुँचा देंगे हमें?' उस लडकी ने पूछा।

'हाँ', मैंने पत्र को लिफाफे में रखते हुए कहा।

उसने कहा—'आप रो रहे हैं। क्या हमारी हालत से आपके दिल पर इतनी गहरी चोट लगी?'

'यह मेरा ही लिखा हुआ पत्र है।'

घूँघटवाली और मेरे मित्र की बहन ने आश्चर्य से मेरी ओर देखा। दोनों के मुँह से आश्चर्य की एक हलकी आवाज़ भी निकली।

पानी बरसना बन्द हो गया था। उसके हाथ से बक्स और गठरी लेकर मैंने कहा—'चलो, पानी बन्द हो गया है।'

वे दोनों टीन के छप्पर से निकलकर मेरे पीछे हो लीं।

मैं सोच रहा था, मेरा मित्र नहीं रहा। क्यों नहीं रहा; अपनी बहन और पत्नी को मेरे आसरे कैसे छोड़ गया? कुछ समझा तो जाता!

टीन का छप्पर बहुत पीछे रह गया था। पानी से भीगी सड़क पर मेरे साथ वे दोनों भी चल रही थीं।